नी र जा

(मौलिक सामाजिक उपन्यास)

बंसीलाल यादव

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

प्रकाशक :

जयकृष्ण अग्रवाल,

कृष्णा ब्रदर्स,

कचहरी रोड, अजमेर ।

मूल्य : रु० ४-५० पैसे

मुद्रक :

एच. सी. कपूर,

टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस, ब्रह्मपुरी, अजमेर ।

बेटे सुनील

को—

प्यार सहित

······वंश, कुल और मर्यादा का आग्रह मालकिन की ओर से इतना प्रबल और स्पष्ट दिखाई दिया कि अमिताभ उसे स्वीकार कर उठा। उसका चेतन-मानस यदि उसे स्वीकार नहीं करता तो उसकी सम्पूर्ण आत्मीयता ही अस्वीकृत हो जाती।

······एक अदमनीय ललक आज भी रह-रह कर अमिताभ से कहती है कि जीवन का एक-एक क्षण नीरजा का है और उसी के इंगित किये तप, कला, साधना और तपश्चर्या की आग में ही उसे जीते रहना है। जीवन को मुड़ कर देखना व्यर्थ है।

······यह अदमनीय ललक साक्षी है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध सो भले ही गया हो, मरा नहीं।

बं. ला. यादव

१

सुबह से ही आकाश पर बादलों की धक्का-मुक्की थी। हवा के ठंडे-ठंडे झोंके शरीर को छू-छू जाते थे। बड़ा ही 'रोमाण्टिक' दिन था।

अमिताभ के सामने 'एमिलज़ोला' का 'नाना' खुला हुआ था। रोचक कहानी, जिसमें करुणा की तड़प, प्रेम, वेदना और विरह के घात-प्रतिघात। समाज का वास्तविक दिग्दर्शन, वर्णन-शैली, वाक्य-चातुर्य और प्रकृतिवाद—सबने उसे उलझा रक्खा था और वह एकस्थ, एकनिष्ठ पढ़ने में लीन था।

सहसा, खुले पृष्ठ पर हल्की-सी परछाँई कँपकँपाई। उसने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। वह जीवित परछाँई आखिर फैलती हुई लम्बी होकर गाढ़ी हो गई और फिर स्थिर! सामने की खुली खिड़की में तभी ज़नाने लिबास की सरसराहट हुई, चूड़ियों का हल्का-सा संगीत बिखरा, वायु से खेलते हुए सौरभ की एक तेज़ लपट आई। उसने जल्दी से खिड़की की ओर देखा, कि तभी आँखों का जोड़ा मुस्कराता-सा ओझल हो गया।

'......नीरजा!' मन ही मन वह फुसफुसाया, फिर ऐश-ट्रे पर से सिगरेट उठाकर होठों में दाबी, जलाई और फिर जल्दी से बालकनी की ओर लपका।

नीरजा खिलखिलाती-सी उसे दो गज़ पीछे छोड़ गई।

अमिताभ ने हल्की पुकार मचाई—'नीरजा! ओ नीरजा!'

वह सहसा रुक गई। अमिताभ की ओर पीठ किये, मानो सुनने के लिये रुक गई।

अमिताभ ने अनुनय के स्वर में कहा—'नीरजा, आओ न, दो पल इधर।'

'क्यों ?' नीरजा प्रश्न बन बैठी।

अमिताभ ने दुबारा कहा—'आओ न नीरजा।'

वह बोली—'छी: ऐसी भी क्या अधीरता ?' और उसके कपोलों पर गुलाब की कली शरमा कर लेट गई। 'नहीं नीरजा! तुम्हें आना ही होगा! सच!' अमिताभ ने अनुरोधपूर्ण स्वर में कहा।

'अच्छा, थोड़ा ठहरो! अभी आई!' यह कह, नीरजा पड़ोस के कमरे में भाग गई और उसके साथ ही एक हल्का-सा विश्वास अकुला कर वायु की लहरों में डूब गया!

..... उफ़, यह नीरजा, यह लड़की—कुछ विचित्र-सी लड़की है यह! 'अच्छा' और 'अभी' कहकर अमिताभ को विचित्र-सी उलझन दे जाती है। महीनों से उसका यह क्रम है। जब जब वह उसे दीखती है, वह चाहता है, जीवन का यह क्षण अनन्त हो उठे।

नीरजा के सान्निध्य में अमिताभ स्फूर्ति पाता है। तत्परता पाता है, यह स्वस्थता—सुख की यह थिरकन अब अमिताभ के प्राणों के लिये नवीन और कौतुकमयी तो नहीं है क्योंकि ऐसी अनुभूति को वह प्रायः नित्य ही पाता है और दिन के अवसान के साथ-साथ वह उसे खो भी देता है। तब एक विचित्र सा धुँआँ उठने-भरने लगता है और उसे अनुभव होता है जैसे विषाद उसके समस्त अस्तित्व, उसकी सत्ता को बूर देगा।

श्वासों के घुटन और आशा के झीने-झीने छोर को पकड़े हुये तब वह अनायास ही फुसफुसाने लगता है—'तेरे वादे पे जिये हम तो ऐ जान झूँठ जाना, कि खुशी से मर न जाते ग़र एतबार होता।'

—यों ही रात जवान होती और ढल जाती है। बस, यही नित्य का क्रम है। नीरजा फिर नहीं आती। अमिताभ रह जाता है और रह

जाती हैं उसके गिर्द ये निराशाजनक घड़ियाँ, जिनमें गुजरती हुई ज़िन्दगी बोझिल और आकर्षण-विहीन अनुभव होने लगती है—पर नीरजा नहीं आती ।………

अमिताभ वापस अपने कमरे में आ गया । नौकर मेज़ पर चाय रख गया था । वह चाय की घूँटों से खेलने लगा और सिगरेट के धुँए की अलकों में उलझे विचारों ने उसे घेर लिया ।

शाम को गुसलखाने से निकलकर कुर्त्ता और धोती पहनी और फिर जैसे ही शीशे की ओर गया तो देखा, मेज़ पर से उसका चित्र गायब था और एक दूसरे छोटे चित्र का काँच निकालकर उसकी अच्छी ख़ासी दुर्गति बनाई गई थी । चित्र पर स्याही से लम्बी-लम्बी मूँछें बना दी गई थीं और नीचे चिढ़ाने से अक्षरों में लिख दिया गया था—'एक ग्रेजुएट बन्दर !'

अमिताभ ने जैसे ही तिलमिलाकर इधर-उधर देखा, बाहर से एक स्वच्छन्द खिलखिलाहट सुनाई दी । लपककर उसने नीरजा का हाथ पकड़ लिया । वह तड़पकर रह गई ! साड़ी का छोर घने बालों पर से खिसकता हुआ कन्धों पर आ गिरा और कपोल रक्तिम हो उठे । अमिताभ ने देखा, उस रूप-प्रतिमा की पलकों के बीच सौरभ से लदी साँझ में……नहीं-नहीं उसने देखा, लाल कमल की पखुड़ियों जैसे उसके होठों पर मिठास और लुनाई ने साथ-ही-साथ आवास बना लिये थे और प्राणों की हर दौड़ के साथ यौवन की अथक-सी उसासें विद्रोह-सा कर रही थीं, और……!

'छोड़िये—छोड़िये मुझे, नहीं तो ।'……

'नहीं तो क्या ?' अमिताभ ने उसकी एक न सुन, बस उसे कुर्सी पर बिठा दिया !

'अब बताओ, मेरा चित्र क्यों चुराया ?' कृत्रिम रोप में अभिताभ ने पूछा !

'झूठे ही ?' विचित्र चितवन के साथ अमिताभ को ताकते हुए नीरजा बोली !

'हँसी न करो नीरजा । मेरा चित्र मुझे वापस कर दो ।' गम्भीर होते हुये अमिताभ बोला ।

'क्यों ?—क्यों ??' नीरजा की पलकों के कोने लम्बे हो गये !

'क्योंकि—वह—मैं—'

नीरजा खिलखिला पड़ी ! कुछ देर नीरव रहने के पश्चात् बोली—'अच्छा, एक बात बताओ अमिताभ !'

'पूछो !'

'दुनिया में तुम सबसे अधिक प्रेम किसे करते हो ?'

'प्रेम ? सबसे अधिक ?' यह कह, अमिताभ चुप हो गया ।

कुछ सोचकर चुप हो गया और उत्तर की प्रतीक्षा में नीरजा के वक्षस्थल का उठना-बैठना झलकने लगा !

नीरजा को यह चुप-सा वातावरण खल रहा था । एक मिनिट बाद बोली—'बताओगे नहीं ?' तुम्हें दुनिया में सबसे अधिक प्रिय कौन है ?'

कुछ क्षण के मौन के पश्चात् अमिताभ ने कहा—'इस बात को छोड़ नीरजा । क्या करेगी तू जानकर ?'

नीरजा व्यग्रता के स्वर में बोली—'बताओ न अमिताभ !'

'दुनिया में सबसे अधिक प्रिय मेरे लिये—' नीरजा की आँखों में आँखें डालते हुये अमिताभ बोला—'कला है नीरजा ! मेरी तपस्या, मेरी साधना !'

'ओ—' नीरजा के होठों पर सहसा एक विश्वास सिसक उठा और पलकों की कोरों पर बूँदें आकर ठिठक गईं । आँखों पर जैसे भीगे

बादल घिर आये हों। उठते हुए बोली—'जाऊँगी अब। दीए-बत्ती का समय······ अमिताभ ने चीखते हुए पूछा—'अरे नीरजा, तुम्हारा यह मुँह सहसा उतर क्यों गया ?'

नीरजा ने फट से संयत होते हुए कहा—'सूरत सदा झूँठ बोलती है अमिताभ ! यह कह, वह कुछ रुकी और फिर विचित्र मुस्कान में बोली—'जीवन-शास्त्र से अभी इतने अनभिज्ञ हो चित्रकार, यह मैं न जानती थी !'

'ओ !' अमिताभ ढह-सा पड़ा।

जब नीरजा चौखट पार करने लगी तो अमिताभ ने पुकार कर कहा—'नीरजा, सुनो तो·········'

'कह तो रही हूँ। दीया-बत्ती का समय······' मीठी झिड़की में नीरजा ने कहा।

'पर सुनो तो नीरजा। मेरी साधना का आधार तुम हो ! मुझे सदा तुमसे प्रेरणा मिलती रही है। तुम्हें खोकर मेरी कल्पना, मेरी कला पंगु हो जायेगी नीरजा। मैं वैसे ही निरीह हूँ, मुझे और न सताओ !'

नीरजा सहसा रुक गई, फिर चाँदनी-सी खिलाकर बोली—'तुम्हारी इस सहानुभूति के लिये, सच, मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँ अमिताभ'—और यह कह, तेज़ी से चली गई।

अमिताभ नीरव, हतप्रभ रह गया !

२

अमिताभ चाय पी रहा था कि नीरजा आ गई।

अमिताभ ने पूछा—'चाय पीओगी नीरजा ?'

'ज़रूर !' समीप की कुर्सी पर बैठते हुए नीरजा बोली ।

अमिताभ ने बनी हुई चाय प्याले में डालते हुए प्याला नीरजा की ओर बढ़ा दिया !

'क्या सोच रहे हो ? चाय की घूँट लेकर नीरजा बोली ।

'सोच रहा हूँ......कि तुम्हारे चेहरे पर वह ज्योति है जो सुबह-सुबह आकाश पर फैल जाती है । इन कपोलों पर वह लालिमा है जो अस्त होते समय सूर्य बादलों में छोड़ जाता है और......'

'मैं जाती हूँ !' नीरजा सहसा उठ खड़ी हुई ।

हाथ फैलाकर अमिताभ ने रोका उसे—'अरे......अरे...नीरजा'...

वह पुनः बैठ गई !

तो अमिताभ ने बात चलाई—'हाँ तो नीरजा, मेरा वह चित्र ?'

'सो ?'

'मेरा चित्र मुझे वापस कर दो । सच !'

'क्यों ?' प्याले पर दृष्टि जमाते हुए नीरजा बोली ।

'क्योंकि तुम उस चित्र का करोगी भी क्या ?'

'तुम्हें इससे क्या ?'

अमिताभ चुप हो गया और चुपचाप चाय पीने लगा ।

नीरजा ने पूछा—'क्या नाराज़ हो गये अमिताभ ?'

'.........'

'किसी को त्रास देना मुझे इष्ट नहीं अमिताभ ! वाक़ई नाराज़ तो नहीं हो ?' व्यथित स्वर में नीरजा ने पूछा ।

'.........'

'बोलो न अमिताभ !'

अमिताभ ने चिढ़कर कहा—'मुझे और न सताओ नीरजा ।'

कुछ देर नीरजा विवश-सी उसकी ओर ताकती रही ! फिर सहसा उसके दिल में एक पुरवैया का झोंका उमड़ा-घुमड़ा और बरबस होठों

से टकराकर कराह उठा—'तुम जल्दी ही अपना सन्तुलन खो बैठते हो ना ?'

अमिताभ चीखकर कहना चाहता था 'हाँ'—किन्तु उस समय अनायास ही हँसी आ गई !'

'तुम मुझे प्यार करते हो ?'

'.........'

तुम मेरा सुख चाहते हो ?'

'.........'

'बोलो न अमिताभ ।'

'क्या ?' अमिताभ ने तंग आकर कहा और सिगरेट सुलगाली ।

'यही कि तुम मुझे प्यार करते हो ?'

'यह भी क्या तुमसे छिपा है नीरजा ?'

नीरजा कुछ देर मौन रही, फिर बोली—'तुम एक चित्रकार हो अमिताभ ! एक कलाकार !'

अमिताभ बोला—यह मेरे लिये कुछ भी तो सन्तोष की बात नहीं है नीरजा । ऐसी बातों से मेरी जलन और बढ़ जाती है, तुम तो जानती ही हो । मुझे तृप्ति की एक घूँट चाहिये । बस, एक घूँट और वह केवल तुम दे सकती हो ।'

नीरजा के मुख पर कोई भाव न था ! एकदम उदास, मौन !

कहा अमिताभ ने—'नीरजा, मैं तुमसे दूर पल भर भी नहीं रह सकता । मैं तुम्हारे प्यार की उष्णता लेकर अपने प्राणों से सौदा करना चाहता हूँ और तुम इतनी निर्दय हो कि.........' यह कह, अमिताभ बेचैनी से हाथों को रगड़ने लगा !

नीरजा सम्यक् चीख उठी—'तुम्हें मुझे भूलना होगा, तुम देश की धरोहर हो अमिताभ । मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं । तुम्हें महान्

बनना है—सोचो तो ।'—नीरजा की आँखों में कसक का स्निग्ध भाव था और उसके मुख पर वेदना की रेखायें करवटें बदल रही थीं !

अमिताभ ने खीझ कर कहा—'क्षमा करो नीरजा, मैं तुम्हें महानता नहीं दे सकता, अपना तुच्छ प्यार तुम्हारे चरणों में उँडेल सकता हूँ । मैं तुम्हें खोकर, विश्वास करो, अपूर्ण रह जाऊँगा । मेरी पूर्णता तुम्हारी शीतल और ऊर्जस्वित छाया में ही संभव है नीरजा ।'

नीरजा सहसा उठ खड़ी हुई और आँसुओं के वेग को संभालते हुये बोली—'तुम्हारे इन शब्दों में मुझे गिरावट की परछाँई साफ दिखाई दे रही है अमिताभ । इन शब्दों में गिड़गिड़ाहट है, गिरावट है—कर्त्तव्य और प्रगति नहीं······बलिदान भी नहीं ।'

'नीरजा !' अमिताभ चीख उठा—'मुझे भी तुम्हारे इन भारी-भरकम शब्दों से कतई मोह नहीं, इन्हें अपने तक ही रखो । मोह हो तो मैं स्वयं का बलिदान दे सकता हूँ ।'

'अच्छा । अभी आई ।'—

अमिताभ तिलमिला उठा । नीरजा के इस 'अच्छा' और 'अभी आई' की पता नहीं इति कहाँ है ?·········

उसने सिगरेट को क्रोध में फेंक दिया ।

जब पूरे तीन घंटे बाद वह आई तो अमिताभ ने देखा, उसकी आँखों में आँसू चमक रहे थे । मुख तुषार प्रताड़ित फूल की भाँति था ।

अमिताभ बिस्तर पर हड़बड़ाकर उठ बैठा और स्नेह विगलित स्वर में बोला—'नीरजा·········'

'मैं यह कहने आई हूँ—' नीरजा ने भर्राये स्वर में कहा 'कि अब मैं यहाँ न आया करूँगी अमिताभ ! सच, कभी नहीं !' और यह कह, वह जाने का उपक्रम करने लगी ।

अमिताभ ने उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा या धृष्टता की—'नीरजा ! नीरजा !'

'छोड़ दो, छोड़ दो मुझे, वरना........'

'तो फिर आई क्यों थीं ? क्यों मुझ से घुली-मिलीं ? क्यों मेरे होठों की मुस्कान और आँखों की नींद छीनी ? लाओ, मेरे सपनों की मिठास मुझे वापस दे दो। मेरी आँखों की नींद और प्राणों का चैन—लाओ, मुझे लौटा दो। लाओ, मेरा सब कुछ मुझे वापस दे दो। लाओ !' अमिताभ आवेग से पागल हो उठा।

'छोड़ दो मुझे, छोड़ दो।' एक झटके के साथ वह हाथ छुड़ा कर सुबकती हुई कमरे से भाग गई।

हाथों में मुँह ढाँप, अमिताभ कसमसाने लगा। उस अवस्था में पड़े-पड़े जाने कितना समय बीत गया था कि अचानक उसने अपने जलते हुए मस्तक पर शीतल स्पर्श अनुभव किया !

चौंककर जैसे ही उसने सिर ऊपर उठाया, उसके मुँह से अनायास निकला—

'नीरजा..........'

'हाँ अमिताभ !' स्वर में कुछ वेग था और होठों पर रुलाई !

'तुम रो रहे थे अमिताभ ?

'क्यों ?' अमिताभ ने प्रश्न और उत्तर को एकाकार कर दिया।

'इन दिनों देखती हूँ कि तुम्हारा जीवन हिचकोले खा रहा है अमिताभ। खाने-पीने के विषय में भी......यह अस्थिरता और अन्य-मनस्कता कैसी है, क्यों है अमिताभ ?'

'तुम्हें इससे क्या ?'—अमिताभ ने असहिष्णु स्वर में कहा—'तुम मेरी कौन ?'

नीरजा के होठों पर मुस्कान सिसक उठी। वह जैसे कहने को हो कि क्या सच ही अमिताभ मैं तुम्हारी कोई नहीं ?......प्रकट में बोली—'मैं तुम्हारी......' कहते कहते उसका स्वर आँसुओं में डूब गया।

'नीरजा !' अमिताभ ने उसके दुःख से प्रेरित हो अपना मुख उसके घने-घने बालों में छिपा लिया ।

देर तक नीरजा की उँगलियाँ अमिताभ के बालों में फिरती रहीं और देर तक कमरे में नीरजा के अश्रु-व्याकुल दीर्घ निःश्वास मँडराते रहे । 'मैं तुम्हारी······कुछ तो हूँ ही······अमिताभ ! और कुछ नहीं तो······पड़ोसिन ही सही ! ······नहीं अमिताभ ?'

× × ×

संध्या को लैम्प के सामने बैठा अमिताभ नीरजा की माता का चित्र बनाने में व्यस्त था कि नीरजा हाँपती-सी आई और उसका हाथ कैनवास पर से खींचते हुए बोली—'मैं बहुत ही सोचती रही हूँ कि जीवन क्या है, किसलिये है, पर समझ में नहीं आया । तुम बताओ अमिताभ ।'

लैम्प की रोशनी में नीरजा की बिखरी केश-गुच्छियों को देखते हुए, एक सिगरेट सुलगा, अमिताभ हँस पड़ा—'विचित्र लड़की ! दुनिया की सबसे विचित्र लड़की !'

उसके कन्धों पर झुकते हुए, उसने पुनः झँझोड़ा—बताओ न अमिताभ !'

अमिताभ जानता था, नीरजा ढीढ है—उसे छोड़ेगी नहीं, अतः कुछ सोचता-सा बोला—'पहले तुम बताओ नीरजा कि तुम्हारे इस प्रश्न का यथार्थ संकेत और तुम्हारे मन की जिज्ञासा क्या एक ही हैं ?'

'पहले मेरी बात का जवाब दो अमिताभ ।' व्यग्रता के स्वर में नीरजा बोली !

'तो सुनो । जीवन अवकाश है, दो घड़ी की मौज ! अपना उत्सर्ग जीवन के प्रति विश्वास-घात है ।'

नीरजा अमिताभ से दूर छिटकते हुए बोली—'यह तो जीवन का उतार हुआ, अमिताभ ! यदि जीवन केवल सम्भवत: प्राप्त किये जा सकने वाले सुखों के लिये ही है तो क्या उसका उद्देश्य ऊपर की ओर गर्व से देखना नहीं है ?'

अमिताभ के माथे की प्रत्यंचाओं पर चिन्ता की गाँठें पड़ गईं ! वह मन ही मन सोचने लगा—नीरजा का प्रयोजन ?

'यह नीरजा……?' उसने जोर का एक कश लिया और कहा—

'लेकिन नीरजा, यदि उतार की सीढ़ियों पर दौड़ने में सुख मिले तो चढ़ाई की थकान ज़बरदस्ती स्वीकार करना क्या विचित्र चुनाव न होगा ?'

कुर्सी पर बैठते हुए नीरजा पहले मुस्कराई, फिर कहने लगी—'क्या तुमने उतरते हुए धूमकेतुओं को टूटते-फूटते नहीं देखा कलाकार ?'

सिगरेट को ऐश-ट्रे पर झाड़ते हुए अमिताभ नीरजा की ओर मुस्कराते हुए बोला—'पर मेरी इण्टर पास नीरजा, हमारे उतार-चढ़ाव का निर्णायक क्या मनुष्य नहीं होता ?'

नीरजा अपने भीतर जैसे किसी से लड़ रही थी। कुछ क्षण की नीरवता के पश्चात् बोली—

'अच्छा यह बताओ अमिताभ, कि यदि मैं तुमसे कहीं दूर चल दूँ तो ?'

'तो मेरी कला रो उठेगी, असह्य हो जायेगी वह।'

'लेकिन हमने तो यही सुना था कलाकारजी !'—कठोर हँसी में व्यंग्य कसते हुए नीरजा बोली—'कि कला दूरी में और भी निखर उठती है ?' यह कह वह हौले से मुस्करा दी।

पुरानी बात ! वही महानता ! वही कर्त्तव्य और प्रगति की पुरानी बात ! और यह सब कुछ अमिताभ को नहीं चाहिए था। वह

अस्थिर हो उठा। क्रोध-कम्पित स्वर में बोला—'नीरजा—। तुम जाओ यहाँ से। तुम यहाँ कभी न आया करो। तुम······' और उसका स्वर अवरुद्ध हो चला।

नीरजा ने अमिताभ को ग़ौर से देखा और फिर मौन, मूक, सिर डाले कमरे से अहिस्ता-अहिस्ता चली गई। उसके जाते ही अमिताभ ने पास पड़े स्टूल पर सिर टेक दिया और बालों को नोंच डाला।

३

जब टाइम-पीस की सुई खिसककर साढ़े सात पर आ गई तो अमिताभ ने सामने रखी चाय को ढकेल दिया। जान लिया नीरजा अब नहीं आयेगी, कि नीरजा सुबह की चाय शायद आज से उसके यहाँ नहीं लेगी, कि नीरजा को कुछ बुरा-सा लग गया है, कि नीरजा बहुत ही मानिनी है!

और बिना नीरजा के चाय पी लेना अमिताभ को कुछ जँचता नहीं, चाय गले से नीचे उतरती ही नहीं। विचित्र आदत हो गई है। वह भी मानता है कि बुरी आदत है यह—दिमाग से अधिक दिल को, भावना को स्थान दे बैठना! पर आदत की अच्छाई व बुराई को गौण समझकर, वह वही करता है, जो मानता है। जो मानता है, वही करता चला जाता है–निर्द्वन्द, अनवरत! सामान्य हुआ कि सुन्दर है।'

एक सिगरेट सुलगा, वह नीरजा की वृद्धा माँ के उस अधूरे पड़े चित्र के सम्मुख जाकर बैठा ही था कि नीरजा की वृद्धा माँ आ गईं। कहने लगीं—'अब तू ही बता अमिताभ, मुझे जलाने में भला इस नीरजा को कौन खास आनन्द मिलता है?'

कहना तो चाहा अमिताभ ने कि अम्मा, बहुत सुख मिलता है उसे—बड़ी तृप्ति ! वह युवा है और जीवन के निकट। तभी से यह सब असन्तोष है और क्षोभ ! और इसी नीरजा से कुछ ऐसा हो जाता है, जिसमें वह नहीं होती ।.........

प्रकट में अम्मा को कुर्सी पर बिठाते हुए अमिताभ ने मुस्कराकर पूछा—'क्या बात हुई अम्मा ? क्या किया है नीरजा ने ?'

'ईश्वर ही जाने बेटा —' सानुनासिक स्वर में अम्मा बोलीं—'इस लड़की ने क्या ठान रखी है जी में। कल रात भी खाना नहीं खाया और न आज सुबह चाय को ही मुँह लगाया है। मुझे तो इसका भेद ही मालूम नहीं पड़ता बेटा !' कहते-कहते अम्मा के झुर्रियों से भरे पोपले मुँह पर चिन्ता की हल्की-हल्की लकीरें खिंच आईं !

बात सुनकर अमिताभ को भी दुःख हुआ । मन-ही-मन सोचने लगा—तो बात यहाँ तक बढ़ गई ? तो नीरजा ने मेरी ज़रा-सी बात को लेकर यह बवण्डर उठा लिया है ? अपने को दण्ड देने का यह नया तरीका निकाला है उसने......? बोला—'तुम चिन्ता न करो माँ, मैं उसे अभी देखता हूँ।'

आश्वासन पा, माँ कुछ देर बैठने के पश्चात् पूजा के लिये चल दीं !

माँ के चले जाने के पश्चात् अमिताभ अकेला बैठा कुछ देर सोचता रहा, फिर उठा और उठकर बाहर आया। दरवाज़े पर आते ही नीरजा दिखाई दे गई। धूप चढ़ आई थी पर नीरजा छत पर टहल रही थी । उसे देखते ही उसने तत्काल मुँह फेर लिया। अमिताभ को हँसी-सी आई ! नीरजा देवी कल से भूखी हैं पर घूम ऐसे रही हैं मानो ज़्यादा खा लिया हो और अब हजम करने की चेष्टा कर रही हों ।

उसने पुकार कर कहना चाहा—'ओ विचित्र महिला, पेट की दुश्मनी इन बेचारे पैरों से तो न निकालो।' लेकिन तभी अम्मा दिखाई दे गईं, अत: उसने निकट जाकर कहा—'माँ, जब नीरजा नीचे आये तो ज़रा भेजना मेरे पास।'

'अच्छी बात !' और माँ ने पुकार मचानी शुरू करदी—'नीरजा ! ओ नीरजा……'

अमिताभ अपने कमरे में आ गया और आकर तेज़ी से घूमने लगा—अब नीरजा आएगी, अब मैं उससे कहूँगा……! क्या कहूँगा मैं ? कहूँगा कि……!

नीरजा उसके सम्मुख थी। सूजी-सूजी आँखें, उपालम्भ से परिपूर्ण मुख कमान की तरह तनी हुई भृकुटि !

'क्यों बुलाया है मुझे ?' नीरजा ने सीधा प्रश्न किया।

यही पूछने, कि आज सुबह की चाय और आज……'

'क्यों ? तुमने तो मुझे निकाल दिया था ना ?'

'तो मैंने तुम्हें बुला भी तो लिया है नीरजा ?'

उसके होठों की कोरों में सीमित मुख की एक लकीर खिंच-सी गई और वह आगे बढ़कर कुर्सी पर बैठ गई !

अमिताभ ने परिहास किया—'नीरजा, यदि घूमने के पश्चात् भी खाना न पच सका हो तो……'

'तो क्या ?' भवें तरेरते हुए नीरजा ने पूछा।

'तो डाक्टर के यहाँ से कोई औषधि……?'

नीरजा के कपोल रक्तिम हो उठे !

'नीरजा, तुमने ठीक नहीं किया है।'

'क्या ?' अस्पष्ट से स्वर में नीरजा ने पूछा।

'यही कि ग़लत आदमी को दण्ड दे डाला है ! अपराधी जो था, उसे दण्ड न देकर निर्णायक तुम स्वयं बन बैठीं। मुझे ही सज़ा दे देतीं नीरजा ?' स्नेह विगलित स्वर में अमिताभ ने कहा।

'अमिताभ !' नीरजा सहसा सिहर उठी !

'हाँ नीरजा—' व्यथित स्वर में अमिताभ बोला—'जो कुछ तुमने किया है, उसके प्रति मेरी हिंसा ही जग सकी है। किन्तु मैं अपनी उस हिंसा का प्रयोग कर नहीं सकता क्योंकि वैसा अधिकार मुझे तुम्हारी ओर से प्राप्त नहीं है।'

नीरजा नीरव बनी सुनती रही।

अमिताभ कहता रहा—'अब तक जो तुमसे प्राप्त हो सका है, उसे मैंने 'दया' की ही संज्ञा दी है, लेकिन आज जब उसके भी छिन जाने का संशय हुए बिना न रहा तो मुझे काफ़ी क्लेश हुआ है। अपने सपनों में आज पहली बार मुझे उलझन पैदा होती दिखाई दी है।'

'तुम्हारे सपने क्या हैं अमिताभ ?' व्यग्रता के साथ नीरजा ने पूछा।

'मेरे सपने......' कहते कहते अमिताभ सहसा रुक गया, बोला—'एक दिन बताऊँगा तुम्हें। अभी तुम अस्थिर हो, तुममें विराग है, क्षोभ है। अभी तो—तुम कुछ खा आओ ताकि माँ की चिन्ता दूर हो !'

नीरजा उठ खड़ी हुई। चलते-चलते उसने अमिताभ को इस चितवन से ताका मानो पूछती हो—लेकिन तुम्हारे वह सपने अमिताभ......?'

अमिताभ ने कहा—'बाद में आओगी ना ?'

'हाँ, अभी आई !' यह कह, वह चली गई ! तत्पर-सी, प्रस्तुत-सी तुष्ट-सी ! उफ़, वही 'अभी' !......नीरजा का यह 'अभी' पूरे एक युग का होता है।

अमिताभ ने दूसरी सिगरेट सुलगाई और सोचने लगा। यह लड़की ! कितनी विलक्षण है यह लड़की ! बदली की तरह ठंडक देती है, छाया देती है और फिर बरसकर शून्य में लीन हो जाती है। चार-छह माह पूर्व जब इस नीरजा के पड़ौस में रहने का अवसर प्राप्त हुआ तो माँ-बेटी के इस जोड़े ने कुछ ही दिनों में उसे अत्युक्त सीमा तक अपना बना लिया। माँ ने उसे मातृत्व के स्नेहाँचल में भर लिया और नीरजा की विलक्षणता ने उसे अजगर के श्वास में खिंचे हुए मृग के समान अपनी इच्छा के भीतर निगल लिया……!

उफ़, इस आगरा शहर में आने और यहाँ के मिशन स्कूल में मास्टरी प्राप्त करने के पूर्व उसके जीवन में कितने उतार-चढ़ाव आये थे। कितने कटु अनुभवों से दो-चार होना पड़ा था। कितना धुँआँ और कैसी विषमता उसके हृदय में भर उठी थी, जब उसने जाना था कि उसके पिता उसे रुपया कमाने की मशीन—एक एस. डी. ओ., नहरों का एक मालिक बनाने के स्वप्न, हृदय में संजोए हुए हैं। उसकी समस्त सत्ता एक बारगी हिल उठी थी। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कितना गिर सकता है, यह जानकर वह कितना आवाक्-विस्मित रह गया था। पिता ने बड़े उत्साह से कहा था—'बेटा एक दिन हाकिम हो जाओगे—हाकिम ! नहरें तुम्हारे कब्जे में होंगी और कई गाँव तुम्हारे तलुए सहलायेंगे।'

हतप्रभ हो, उसने कहा था—'मैं समझा नहीं आपका आशय।'

'अभी बच्चे हो। स्वयं समझ जाओगे एक दिन'……अर्थभरी मुस्कान में उसके पिता ने कहा—'स्वयं समझ जाओगे एक दिन जब फ़सल बर्बाद होने के डर से गाँव तुम्हें थैलियाँ नज़र करेंगे !

उस समय तुम जिस गाँव को चाहोगे पानी दोगे ! तुम्ही उनके ईश्वर होओगे।'

'ईश्वर……?' अमिताभ का मन कड़वाहट और क्षोभ से भर उठा। तीव्र स्वर में बोला—'यह तो बड़ी ज़लील कमाई है पिताजी। पानी ईश्वरीय देन है। संसार के लिये पानी मुफ़्त चीज है मुफ़्त होनी चाहिये, उसी पानी से किसी को वंचित करने की धमकी देकर हम अपनी जेबें भरें? यह मुझसे कभी नहीं होगा पिताजी—'

पिता ने भवें सिकोड़ते हुए क्रोध-कम्पित स्वर में कहा—'इस लैक्चर-बाज़ी के भूत को ज़रा सिर से उतारकर कुछ होश की बातें कर।'

'बस, कह दिया—यह मुझ से न होगा पिताजी—'

'मैं कहता हूँ, यह भावना है और कोरी भावना से पेट नहीं भरता। समझा!'

'पर……' वह भीतर-ही-भीतर छटपटाने लगा।

'पर-वर कुछ नहीं'—दृढ़ स्वर में पिता ने कहा, फिर कुछ शान्त होते हुए बोले—'यदि तुझे कोई अच्छी जगह मिल गई तो सोच उसमें मेरा क्या स्वार्थ? पिता के सुख की चरम सीमा औलाद को फलता-फूलता देखने में ही तो होती है बेटा।……हाँ तो बता, रुड़की जाने की फिर तय रही ना? तू खर्चे की चिन्ता न कर। जहाँ दस खर्च हुए हैं, वहाँ बीस सही। जब बी० ए० ही करा दिया तो अब कौन दिवाला निकला जाता है? भविष्य तो सँवर जायेगा तेरा।'

अपने भीतर बहुत देर तक लड़ते रहने के पश्चात्, आखिर उसने कह ही दिया—'मैं विवश हूँ पिताजी। इस सम्बन्ध में मेरी ओर से आपको निराश ही होना पड़ेगा। मैं अपनी आत्मा को नहीं मार सकता, मैं अपने आदर्शों का गला नहीं घोंट सकता। जिन चीज़ों को मैं कसौटी पर चढ़ाता हूँ, उन पर स्वयं को न चढ़ाऊँगा। मेहनत करूँगा, मजदूरी करूँगा और ईमानदारी से पेट भरूँगा। आपका ईश्वर दूसरा है, मेरा दूसरा। हमारे ईश्वर अलग-अलग हैं……।'

'अमिताभ'—पिता क्रोध में पागल हो, चिल्लाये—'तो कान खोल

कर सुन ले, आज से हमारे रास्ते भी अलग-अलग हैं। आज से तू मेरा लड़का नहीं, दुश्मन है—दुश्मन।'

और उसी दिन वह घर से निकल गया था, बल्कि निकाल दिया गया था!······

दिन बीतते गये। और एक दिन भाग्य ने उसे यहाँ, नीरजा के निकट ला पटका। नीरजा के सान्निध्य में धीमे-धीमे उसने अनुभव किया कि उसके हृदय में दीर्घकाल से फैले अन्धकार और बोझिल विषाद पर पूनम की चाँदनी-सी छिटकती जा रही है और उसका एकाकीपन नीरजा की मधुरिम हँसी और उसके इर्द-गिर्द फैले विचित्र-उष्ण आलोक में गलता-पिघलता जा रहा है। उसकी विलक्षणता ने उसे अजगर के श्वास में खिंचे हुए मृग के समान अपनी इच्छा के भीतर निगल लिया है।······

नीरजा के पिता शहर के माने-जाने वकील थे। उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी संचित पूँजी पर ही नीरजा व उसकी माँ जीवन-निर्वाह कर रही थीं। उनकी मृत्यु को दो वर्ष होने आये—अब नीरजा यौवन की देहलीज पर आ-खड़ी हुई थी। जैसे ही देहलीज पर उसकी उपस्थिति का भान पास-पड़ोसियों को, बाहर और भीतर होने लगा, कुछ धीमे-धीमे और नई-नई बातें सिर उठा रही थीं। यह नीरजा······! यह अमिताभ······!

जब यदा-कदा रेणु की भाभी, रेखा की मौसी और कम्पाउण्डर हरदयाल के घर में से नीरजा की माँ से पूछती थीं—'अम्मा, यह नीरजा······?' तो अर्थ होता था—'अम्मा यह अमिताभ······?

अम्मा भीतर-ही-भीतर मुस्कराती—'अमिताभ नेक लड़का है। मैं जानती हूँ उसे।' और प्रत्यक्ष में सानुनासिक स्वर में कहती—'नीरजा? हाँ हाँ, उसकी न पूछो भाई। बहुत ही पागल लड़की है

मेरी······' यह कह, वह कुछ रुकतीं और फिर दीर्घ निश्वास लेकर कहने लगतीं—'पराया धन है, हरदयाल की वहू। चली जायगी एक दिन। यही तो होता आया है।' और ऐसा कहते-कहते उनकी आँखें भीग-भीग जातीं।

इस पर रेणु की भाभी, रेखा की मौसी और हमारे कम्पाउंडर साहब की पत्नी की स्पर्धा जो अमिताभ जैसे विचित्र युवक को लेकर हुआ करती थी—केवल इसलिए कि अमिताभ अविवाहित था, नीरजा के पड़ौस मे रहता था, नीरजा से इन गर्मियों की छुट्टियों में विशेष तौर पर बहुत ही मेलजोल हो गया था उसका—वह स्पर्धा शान्त हो जाती थी उनकी।

सहसा अमिताभ को ध्यान आया कि नीरजा अभी तक नहीं आई है। यदि नहीं आना था तो 'अभी' क्यों कह गई? नीरजा के उस 'अभी' पर उसके मन में तीव्र हिंसा जाग उठी। लेकिन सहसा वही विचार आया कि नीरजा मेरी कौन? उस पर मेरा क्या अधिकार? यह जो थोड़ी-सी दया वह मुझ पर कर रही है, वही क्या कुछ कम है? फिर उसकी इस दया को 'प्यार' का रूप दे दूँ, यह मेरा कैसा विचित्र प्रयास? ···

नौकर खाना ले आया तो उसने कहा—'मोहन, खाना यहाँ रख दे और ज़रा देख तो नीरजा क्या कर रही है? कुछ देर बाद मोहन ने लौटकर बताया—'नींद में हैं।'

'ओ!' रोटी का कौर गले में ही रुक गया—'वह नींद में है, उसे नींद आती है, वह आराम से सो सकती है और यहाँ, मैं—, मेरा समय······!'

'जी?' आश्चर्य चकित हो मोहन उसे तकने लगा!

अमिताभ ने चौंककर पुनः खाने पर ध्यान लगाते हुए कहा—'कुछ नहीं! तू जा, अपना काम कर!'

मोहन चला गया ।

रह गया अमिताभ, घड़ी की टिक-टिक और नीरजा का वह 'अभी' ।

४

दस से ऊपर का समय होने आया था पर अमिताभ को नींद नहीं आ रही थी ! वह पलंग पर पड़ा कसमसा रहा था । प्रत्येक करवट पर सोचता था कि नींद क्यों नहीं आ रही ? यह मुझे हो क्या रहा है ? हृदय के अन्तर में यह ज्वाला किसने भर दी है आखिर ? नीरजा ने ? पर नीरज ने कब चाहा है कि मेरा पतन हो, मैं अकर्मण्य बन जाऊँ ? प्रगति के स्थान पर जो एक युग से नीरजा की गोद में मुँह छिपाये पड़े रहने की उत्कट लालसा है—वह लालसा क्या नीरजा ने मेरे प्राणों में फूँकी है ? पिछले कई दिनों से जीवन की धारा किस ओर बह रही है ? जीवन के महत्वपूर्ण कार्य, जीवन की गति, उसका सौन्दर्य प्रायः लुप्त क्यों होता जा रहा है और जहाँ सामने आदर्श और कर्म दिखाई देता है, वहीं वह धारा बच कर क्यों बह निकलना चाहती है ?…… ..

आदमी कितना व्यस्त जीव है । कर्म से घिर कर वह अपने को सतत जागरूक रखता है ! जीवन को निश्चेष्ट नहीं देखना चाहता । और एक मैं हूँ—मैं ! कैसा दुर्बल और दयनीय ! सदैव पाने के लिए व्यग्र और हृदय में अपार हलचल लिये हुए ! एक ऐसी हलचल, जिसमें मेरे उद्देश्य का हर पेच ढीला होता जा रहा है ·····!

जीवन क्या प्रेम से भी गया बीता है ? क्या जीवन अगति का ही नाम है ? तो फिर प्रगति क्या है ? फर्ज, धर्म और आदर्श क्या हैं ? जीवन क्या इतना तुच्छ है कि कुछ-एक प्रिय अथवा अप्रिय घटनाओं के कारण नष्ट होने दिया जाय ?……

सहसा उसकी विचारधारा दूसरी ओर प्रवाहित हो उठी।.........

आदमी क्या वास्तव में दुर्बल नहीं है ? क्या वह कभी किसी को घेर कर रखना नहीं चाहता ? किसी के श्वासों में खोजाने का अवसर नहीं ढूँढ़ता ? किसी नाजुक देह की पसलियों में मुँह छिपाकर सुख से सोया रहना नहीं चाहता ! प्रेम तो ईश्वर का दूसरा रूप है। प्रेम के विना सब कुछ अपूर्ण है, खण्डित है ? फिर मैं अकर्मण्य कैसे हुआ ? मेरी नीवें और बुनियादें दुर्बल कैसे हैं ?.........

अमिताभ भीतर-ही-भीतर सुलग रहा था। कोई राह नज़र न आती थी। विचारों से वह क्षत हो रहा था। चारों ओर एक कोहरा-सा नज़र आता था, जिसमें उसे केवल एक मूर्ति स्पष्ट दीख पड़ती थी—नीरजा की मूर्ति, जो मानो एक लम्बे ढलान के छोर पर खड़ी ऊपर की ओर आने को निमंत्रित कर रही थी। वह कोहरा ऐसा बना था कि बाहर कुछ नहीं दीख पड़ता था और जिसके भीतर टटोलने पर और कुछ नज़र नहीं आता था केवल नीरजा के संसार के। कोहरे के भीतर एक विराट् शून्य था, जिसमें केवल वह और नीरजा ही बस, हिलते-डुलते नज़र आते थे। कभी नीरजा की मधुरिम हँसी, कभी उसकी स्वच्छन्द खिलखिलाहट। उसका मुक्त हास्य कोहरे की दीवारों से टकरा उठता था और तब ऐसा प्रतीत होता था मानो वह परियों का देश हो जिसमें नीरजा उर्वशी थी और उसके स्वप्न उसके गिर्द मँडरा रहे थे। तारों की छाया में, अनादिकाल से जैसे वह और नीरजा उस कोहरे को रहस्यमयी और 'हिप्नाटिक' दुनिया में जोड़ी बनाकर जी रहे थे और उस जीने में रस था, आकर्षण था, एक अपार महाआनन्द था। बाहर जैसे वेदना हो, झुलसन हो, मृत्यु हो। जब कोहरे के फटने की आशंका होती थी तो जैसे वह और नीरजा भीत-विकम्पित से एक दूसरे के आलिङ्गन में गुँथ जाते थे !.........

ठुक-ठुक। ठुक-ठुक।

मुझे आज नीद क्यो नही आ रही ? सब सो रहे है । नीरजा भी सो चुकी होगी । केवल मैं जग रहा हूँ—मै ! क्यो जग रहा हूँ मैं ? क्यो ?

मानव-काया नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी, ससार की मूल्यवान् वस्तुएँ एक दिन निष्ठुर नियति के विशाल उदर मे विलीन हो जाएँगी किन्तु नीरजा के यह स्वप्न— मेरा अपना विश्वास है, युग-युग तक जीवित बने रहेगे ।

ठुक-ठुक । ठुक-ठुक ।

उसके विचारो मे व्यतिक्रम हुआ । यह खिडकी पर कैसी आवाज़ है ? अवश्य ही कोई खिडकी की लपेट मे है वह तत्काल उठ बैठा । ग्यारह बज रहे थे । धडकता हृदय लिये वह द्वार तक गया और जैसे ही द्वार खोले, नीरजा चौखट मे आकर अड गई ।

'नीरजा तुम ! इस समय यहाँ !' विस्मित हो, अमिताभ ने पूछा ।

'बापरे, एक दम इतने प्रश्न ?' नीरजा अमिताभ को ठेलती हुई कमरे मे आ गई ।

द्वार भिडाकर जब वह नीरजा की ओर मुडा तो उसने देखा कि नीरजा ने दूसरे कमरे की बत्ती जला दी थी और पश्चिम की ओर खुलने वाली खिडकी मे खडी हुई थी । वह भी चुप-बना उसके निकट आ खडा हुआ और खिडकी से बाहर देखने लगा । एक नीरव सन्नाटा, नगरी का वैधव्य । दूर बरगद के एक पेड पर किसी पक्षी की छटपटाहट । उससे भी दूर, बिजली और तार के खभो के पार एक एकाकी भागते हुए एजिन की निस्तब्धता भग करती हुई सीटी और फिर वह खामोश पहाडियाँ !

'सब सो चुके । केवल हम जग रहे हैं । बता सकते हो, क्यो जग रहे है हम ?' नीरजा ने बरगद पर दृष्टि स्थिर किये हुए पूछा ।

'तुम्हारे सम्बन्ध मे तो कुछ बता नही सकता नीरजा । हाँ अपनी

जानता हूँ कि कई दिनों से चाह कर भी मैं सो नहीं सका हूँ। कुछ विचित्र-सा वैषम्य, एक विरक्ति-सी जीवन में आ गई है कि संसार में कुछ करने को मन नहीं चाहता। उस नहीं चाहने में 'सोना' भी एक है।' यह कह, अमिताभ ने एक सिगरेट सुलगाई।

नीरजा ने सहसा उसकी ओर घूमते हुए कहा—'तो एक प्रकार से संसार को दूर से देखना हुआ है ना ?'

'हाँ, यदि कोई दुनिया में द्रष्टा बनकर जीवित रह सके तो उससे अधिक भाग्यशाली कोई नहीं'

'तो तुम्हारी परिभाषा में···' बात को अधूरी छोड़कर नीरजा खिड़की से हट गई और उस कमरे की ओर चल दी, जिसे अमिताभ ने 'स्टूडियो' बना रक्खा था और जहाँ इन दिनों अम्मा का चित्र तैयार हो रहा था। वहाँ एक कुर्सी पर बैठते हुए वह बोली—'हाँ तो, तुम्हारी परिभाषा में अभिनय को, संघर्ष को कोई स्थान नहीं अमिताभ ?'

'हाँ नीरजा ! हमारे सभी अभिनय हर एक के लिये अनुकूल उतरें, ऐसा मैं मानता नहीं।'

'ओ !' वह सहसा कुर्सी पर से उठ गई और तीसरे कमरे में जाकर कुछ ढूँढ़ने लगी।

वह बहुत ही अन्यमनस्क नज़र आ रही थी। लगता था मानो उसके भीतर की नारी किसी बहुत बड़े संघर्ष में-से गुज़र रही हो। आखिर ताक में रखे दूध के गिलास के समीप जाकर वह सहसा रुक गई और अमिताभ की ओर पलटकर बोली—'यह क्या, आज तुमने दूध भी नहीं पिया ?'

जब अमिताभ खामोश बना सिगरेट पीता रहा तो वह बोली—'हमें कुछ जागना है, लाओ चाय ही बनायें। स्टोव किधर है ? और वह पत्तीली ·········?'

अमिताभ ने कहना चाहा—'रात के साढ़े ग्यारह बजे यह कैसा पागलपन है ? बर्तन बजेंगे, स्टोव की भर्र-भर्र होगी। आस-पास वाले क्या अर्थ लगायेंगे आखिर ? इस झीनी-सी दीवार के पार जो तुम्हारी माँ है— वह ? हमारे इर्द-गिर्द जो मर्यादाएँ हैं—वे ? समाज में मर्यादाएँ होती हैं, समाज में सिर होते हैं नीरजा।'

इतने में तो नीरजा ने खुद ही ढूँढ़-ढाँढ़कर स्टोव पर पानी रख दिया और अमिताभ को ग़ौर से देखती हुई बोली—'मैं जानती हूँ इस समय तुम क्या सोच रहे हो।'

'क्या सोच रहा हूँ मैं ?' नीरजा के पास फर्श पर बैठते हुए अस्पष्ट से स्वर में अमिताभ ने पूछा। उसे लगा जैसे हृदय के निगूढ़ स्थल में छिपे रहस्य को यह नीरजा अभी निकाल लेगी।

'यही कि तुम पुरुष हो और इस समय अपना मूल्य ज़्यादा आँक रहे हो।' यह कह, वह संक्षिप्त-सी मुस्करा पड़ी।

'नीरजा !' बात पर अमिताभ को दुःख हुआ पर बात अत्युक्त सीमा तक सच थी अतः उसने सिर झुका लिया।

'पर मैं स्त्री हूँ अमिताभ,' नीरजा ने विगलित स्वर में कहा— 'स्त्रियों का कोई धर्म नहीं होता, कोई समाज नहीं होता। स्त्रियों का जहाँ तक मैं जानती हूँ, एक ही धर्म होता है,—वह है आघात सहने की क्षमता रखना !'

स्टोव की भर्र-भर्र में और बिजली के प्रकाश में उस समय नीरजा अमिताभ को देवघर की ज्योतिर्मयी मूर्ति-सी प्रतीत हुई। उसने जोर का एक कश लिया और गम्भीर स्वर में कहा—'नीरजा तुम्हारा यह फैसला, कि पुरुष होने के नाते मैं अपना मूल्य अधिक आँक रहा हूँ, बहुत हद तक ठीक ही है, पर मैंने स्वप्न में भी कभी यह नहीं विचारा कि मेरे कारण तुम्हें कोई आघात पहुँचे अथवा तुम्हारी मान-हानि हो। तुम मेरे जीवन की सबसे बहुमूल्य निधि हो, नीरजा।'

नीरजा पतीली के उछलते हुए ढक्कन को अनिमेष देख रही थी।

अमिताभ कहता गया—'और नीरजा, स्नेह से अधिक मैंने सदैव तुम्हारा आदर किया है। इसीलिए जब-जब मैंने अपने बारे में सोचा है, तुम्हारा ख्याल मुझे सर्वप्रथम आया है। संसार कठोर है, उसे इस प्रकार हमारा मिलना-जुलना कभी नहीं सुहायेगा, चाहे हमारे सम्बन्ध कितने ही पवित्र क्यों न हों। ऐसे सम्बन्ध हमारे समाज में दूषित ही माने जाते रहे हैं।'

नीरजा ने जलती हुई पतीली को हाथ से उठा लिया।

अमिताभ चिल्लाया—'नीरजा! यह क्या किया तुमने, नीरजा?'

हाथों में धारियाँ पड़ गई थीं। उसने जब उन्हें अपने हाथों में लेना चाहा नीरजा ने उन्हें साड़ी के छोर में छिपाते हुए और फिर कुछ ही देर बाद चाय को प्याले में ढालते हुए म्लान हँसी में कहा—'समाज तुम्हारा ही तो है अमिताभ! क्या पवित्र और क्या दूषित! यह सब तुम लोगों ने ही तो अपनी सुविधानुसार उसमें रचा है—अपने स्वार्थ के लिये। अपने हित के लिये। मैंने यदि कोई अपराध किया है, जिसे तुम्हारा समाज अपराध की संज्ञा दे सकता है तो वह प्रेम का साक्षी नहीं, इकट्ठा किया जाना। कसर यही है कि उस प्रेम की घोषणा मैंने मंत्रों के उच्चारण द्वारा तुम्हारे समाज में नहीं करवाई!'

प्रेम शब्द को प्रथम बार नीरजा के मुँह से सुनकर अमिताभ के हर्ष का पार नहीं रहा! प्राणों के तीव्र स्पन्दन में उसके अन्तर का तूफान होठों की राह फट पड़ने को हुआ किन्तु फिर सोचकर उसने अभी-अभी प्राप्त अपने नूतन हर्ष को हृदय के एकान्त क्रोड़ में लुका लिया ताकि उस पर किसी की ललचाई हुई दृष्टि न पड़ सके! जैसे यह निःस्सीम आह्लाद मानो जीवन पर्यन्त हृदय के उसी निगूढ़ स्थल में निवास करेगा और दुर्दिनों में एक प्रेरणा, एक नवीन साहस, एक चेतना, एक नई शक्ति का संचार करता रहेगा।

एक सिगरेट सुलगाते हुये उसने प्याला थाम लिया और कुछ देर आत्म-विभोर-सा बैठा नीरजा को तकता रहा, फिर उसके कुछ और निकट पहुँचते हुये उसने आहिस्ता, बहुत ही आहिस्ता कहा—'एक बार फिर दुहराओ नीरजा कि तुमने प्रेम किया—और इकट्ठा। दोहराओ नीरजा!'

'जाइये!' नीरजा के कपोलों पर कली शर्माकर लेट गई। अपना प्याला ले, वह आराम कुर्सी पर जा बैठी। उस समय अमिताभ ने देखा, कान से लेकर कपोलों तक एक रक्तिम आभा उभर कर नीरजा के खून में पेवस्त हो गई थी। बिजली के प्रकाश में उसने यह भी देखा कि उसके बाल उन बकरियों के झुण्ड के समान दीख पड़ रहे थे जो 'गिलाद' पहाड़ के ढलान पर रहती हैं। उसके होठ लाही रंग की डोरी के समान थे! कनपटियाँ लटों के नीचे अनार की फाँक-सी दीख पड़ती थीं, हल्की धानी रंग की साड़ी में वे उन्नत उरोज मानो मृगी के दो जुड़वा बच्चे थे, जो सोसन फूलों के बीच चरते हों? प्याला पकड़े हुए वह हाथ मानो फीरोजा जड़े हुए सोने के किवाड़ हों और फ़र्श पर वह नंगे पैर जैसे कुन्दन की कुर्सी पर बिठाये हुए संगमरमर के कोई खंभे हों और······

प्याला फ़र्श पर रखते हुए अमिताभ ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा—'सच 'कितनी सुन्दर हो नीरजा·········'

'पागल हो तुम!' नीरजा ने जल्दी-जल्दी चाय को गले में उँडेलते हुए और प्याले को फ़र्श पर रखते हुए कहा—'अब चाय पीओगे भी या यों ही मुझे तकते—बैठोगे?' उसके स्वर में मीठी झिड़की थी।

'चाय क्या पीऊँ नीरजा, मैं तो वैसे ही छक गया। आज किसी के रूप-कुण्ड में मैं समूचा ही झुक गया हूँ।'

'ओ, मैंने आज ही जाना है कि साहित्य का ज्ञान इतना बढ़ गया है।' नीरजा के स्वर में व्यंग्य था!

वे दोनों खिलखिला पड़े।

जब अमिताभ ने प्याले को मुँह से लगाया तो नीरजा ने छीनते हुए कहा—'छिः, शर्बत पी रहे हैं। लाओ, थोड़ा स्टोव पर रख दूँ।'

चाय गरम हुई। कुछ अमिताभ ने पी कुछ ज़बर्दस्ती नीरजा को पिलाई। कुछ बैठे, कुछ हँसे, कुछ बातें कीं। चाँद आकाश पर ऊँचा चढ़ता गया और हवा सर्द होती गई। बारह बजे, एक बजा, दो बज गये। अमिताभ ने चाहा कि समय वहीं ठहर जाये, । जीवन की इस रजनी का कभी अन्त न हो—यह सब विस्तृत हो उठे। अब सूर्य न उगे और आज से भोर न हो।.........

नीरजा पलंग पर लेटी हुई थी। अमिताभ ने उसे यत्नपूर्वक शाल से लपेट रखा था।

चारों ओर सन्नाटा सनसना रहा था। उस सन्नाटे के बीच घड़ी की क्षीण-सी टिक-टिक को सुनता हुआ-सा वह नीरजा के समीप ही आराम कुर्सी पर फैला हुआ था। नीरजा ने अपना शाल उसके घुटनों पर भी डाल दिया था।

कुछ देर के मौन के पश्चात् अमिताभ ने कहा—'नींद आ रही है, नीरजा?'

'ऊँ—हूँ!'

'अच्छा, अब थोड़ा सो लो वरना तबियत खराब हो जाएगी।'

दस-एक मिनट के बाद अमिताभ की ओर तकते हुये नीरजा ने पूछा—'तुम नहीं सोओगे?'

'नहीं।'

'क्यों?'

'आज की रात मैं तुम्हें इतना देख लेना चाहता हूँ कि फिर कोई साध शेष न रहे।'

नीरजा उसकी आँखों में आँखें डाल, हौले से मुस्करा दी।

पाँच-सात मिनिट पश्चात् वह फिर बोली—'अमिताभ, कुछ देर बाद मुझे जाना होगा। अच्छा हो, यदि 'अलार्म' लगा दो और अब खुद भी कुछ आराम कर लो। चार का 'अलार्म' ठीक रहेगा।'

अमिताभ ने चार का 'अलार्म' लगा दिया और पुनः आराम-कुर्सी पर आकर लेट गया और नीरजा के बालों को सहलाने लगा।

'नीरजा, तुम्हें सुख मिल रहा है!'

'बहुत—'

'तुम विवाह कर लो नीरजा।'

'किससे ?'

'............'

वह तकिये पर संक्षिप्त-सी मुस्करा दी।

'बताओ न नीरजा, विवाह के सम्बन्ध में तुम्हारे क्या विचार हैं ?'

'इस विषय पर मैंने कभी सोचा ही नहीं अमिताभ! फिर भी मैं व्यक्तिगत रूप से प्रेम को अधिक महत्त्व देती हूँ, विवाह को कम—!'

'लेकिन समाज कहता है, विवाह पहले, प्रेम बाद में!'

'कहता होगा!'

'यह बात नहीं नीरजा! हम समाज की नीवों को भला कैसे कुरेद सकते हैं? यदि कुरेदेंगे तो जिन बुनियादों पर खड़े हैं, खोखली हो जायेंगी। फिर हम बनेंगे अथवा बिगड़ेंगे किस पर नीरजा?'

'प्रेम स्निग्ध है। आदर्श की तरह कठोर, किन्तु फिर भी स्निग्ध है। उसका महत्त्व मेरे निकट उतना ही है अमिताभ, जितना तुम्हारी

कला, तुम्हारी साधना का है। कदाचित् तुम्हारी कला का स्थान मेरे हृदय में प्रेम की तुलना में कहीं अधिक ऊँचा है और प्रशस्त भी। समाज अंधा है, बहरा है ! उसके कितने ही अवयव आज इतने सड़-गल गये हैं कि जिन्हें यदि शीघ्र ही काटकर न फेंका गया तो वह समस्त व्यवस्था को ही, समस्त ढाँचे को ही ले बैठेंगे।'

'वह ठीक है, किन्तु जिस प्रेम का अन्त विवाह नहीं होता, वह दो आत्माओं का हनन ही है—सामाजिक भर्त्सना की अपूर्ण कहानी भर है……! समाज को वैसी कहानी से न मोह ही है और न कोई सहानुभूति ही !'

'उसके हम इच्छुक भी नहीं—!' दूसरी ओर की करवट लेते हुए नीरजा बोली—

'मुझे प्रेम करना है और तुम्हें महान् बनना है ! समाज को क्या करना है, इसकी समाज चिन्ता करे। लो, अब सो जाओ !'

पाँच-एक मिनट की ख़ामोशी फिर घिर आई।

'यदि हमें माँ इस प्रकार देख ले तो नीरजा ?' अमिताभ ने पुनः बात बनाई !

'तो क्या ? तो कुछ नहीं—और तो सब कुछ भी !'

'पहेली न बुझाओ नीरजा। सच सच बताओ न, तुम जो इस प्रकार माँ से छिपकर मेरे यहाँ आई हो और इस बीच माँ जगी हों और तुम्हें तुम्हारे कमरे में न पाया हो और………'

'व्यर्थ की शंकाओं का शिकार होने की चेष्टा न करो ! माँ को हम पर पूर्ण विश्वास है ! मैं कहती न थी कि पुरुष होने के नाते तुम अपना मूल्य ज्यादा आँक रहे हो। लो, अब थोड़ा आराम कर लो।'

'विश्यास ! इतना दृढ विश्वास ! और उसी विश्वास को हम तोड रह है ! हम ! नीरजा और अमिताभ ! लो, अब थोडा आराम कर लो !'

'आराम ?' अमिताभ क्षत हो उठा।

अरे, फिर कुछ सोचने लगे ? अब कुछ आराम कर लो !'

'हाँ।'

'हाँ !'

अमिताभ ने आँखे मूँद ली !

इसी प्रकार कब आख लग गई, पता ही न चला !

जब आँख खुली तो द्वार खुला था और सूर्य की किरणे कमरे के भीतर प्रवेश कर रही थी। नीरजा जा चुकी थी और वह यत्नपूर्वक शाल से लिपटा हुआ था। मोहन चाय बनाने मे व्यस्त था। 'अलाम' रात मे बजा था और फिर बन्द कर दिया गया था—इसका सबूत अलार्म 'इण्डिकेटर' दे रहा था।

नीरजा चली गई। उसने मुझे जगाया क्यो नही ? क्या कल रात मैने स्वप्न देखा था।

उफ वह रात ! अमिताभ हडबडा कर उठ बैठा।

५

स्वप्न मे एक वासना होती है । उसी वासना का सुख अमित ग अपने बिस्तर पर बैठा हुआ अनुभव कर रहा था। स्वप्न के सत्य क्षणो की याद, बडी ही मधुर, बडी ही आनन्ददायक थी ! सहसा एक विचार उसके दिमाग मे बडी तीव्रता के साथ आया कि कही अम्मा को तो

कल वाली रात का रहस्य मालूम नहीं हो गया है ? यह विचार आते ही स्वप्न का वह माधुर्य, उसका वह सुख सब विलीन हो गया और मन में एक विचित्र-सा भय अंकुरित हो उठा ।

आखिर जब चाय पर नीरजा आई और उसने उसका वही सदा दीख पड़ने वाला स्वस्थ तथा आह्लादयुक्त चेहरा देखा तो उसकी शंकाएँ, उसका भय आधा विलीन हो गया । बल्कि आज उसने एक नवीन बात और देखी । नीरजा और दिनों की अपेक्षा अधिक तत्पर, अधिक प्रफुल्ल और तुष्ट दिखाई दे रही थी । उसके मुख पर एक विचित्र आभा रँगी हुई थी । आँखों में जैसे किसी ने हल्का-हल्का नशा, हल्की-हल्की लाज भर दी हो । रात के जागरण, रात की अप्रसन्न जड़ता और रात की एक एक सुखमयी स्मृति उसके चेहरे पर साफ दृष्टिगोचर होती थी । उसकी अँगड़ाइयाँ, उसके अर्द्ध सुप्त नेत्रों, उसके निःश्वासों और उसकी श्रान्त मुस्कराहट से किसी बहुत ही सुन्दर स्वप्न की गवाही मिल रही थी ।

यद्यपि अमिताभ की जिज्ञासा का समाधान बहुत सीमा तक हो चुका था, फिर भी उसने पूछा—'कल रात तुम्हारी अनुपस्थित का भान माँ को तो नहीं हो सका नीरजा ?'

चाय का एक घूँट लेते हुए नीरजा बोली—'जहाँ तक मैं समझती हूँ—नहीं हो सका । और यदि मैंने गलत समझा है तो भी क्या कुछ बनता-बिगड़ता है ? प्रेम विसर्जन है, उस पर किसी का प्रतिबन्ध तो नहीं होता अमिताभ ! बाधा पड़ने पर वह, सुना है, और भी उग्र हो उठता है ।' यह कह वह कुछ रुकी फिर मुस्कराती हुई बोली—'यह तुम दिन-पर-दिन इतने भीरु क्यों होते जा रहे हो अमिताभ ?'

'भीरु की बात नहीं नीरजा ।' प्याले को मेज पर रखते हुये अमिताभ ने कहा—'तुम्हारी छाया में मैं तूफानों से भी टक्कर ले सकता हूँ, यह तो केवल माँ ही है । बात जो

है, वह है श्रद्धा और आस्था कि जो मैं माँ में रखता हूँ। साथ ही प्रश्न बहुत कुछ मर्यादा का आ जाता है। और माँ मर्यादा के अतिरिक्त पुराने विचारों की पूर्ण भक्त है, यह तो तुम जानती ही हो। धर्म, कर्म और कुल-मर्यादा की जड़ें माँ के आचार-विचार–यहाँ तक कि एक एक रोम में इतनी गहरी और सुदृढ़ हो चली हैं कि अब हम ही नहीं संसार की कोई भी शक्ति उन्हें हिलाने का साहस नहीं कर सकती।'

'अच्छा-अच्छा छोड़ो अब इन पागलपन की बातों को तो—' बात काटते हुए नीरजा ने कहा—'यह बताओ कि आज सिनेमा चलोगे कि नहीं ?'

'सिनेमा ?' हाँ हाँ, क्यों नहीं ? कौनसी तस्वीर है ?' अमिताभ ने पूछा !

'प्यार की जीत'

'खूब···! और हार किसकी ?' अमिताभ ने हँसते हुए कहा।

'तो तय रहा ना ?' नीरजा ने चाय समाप्त करके, उठते हुए पूछा।

'हाँ हाँ, क्यों नहीं ?' कह अमिताभ स्टूडियो में कैनवास के पास जा बैठा ! बैठकर चित्र में कुछ रेखाएँ भरने लगा।

नीरजा भी साथ-साथ चली आई और कुछ देर चित्र की ओर देखने के बाद बोली—'माँ का यह चित्र—'डूबती हुई परछाँई' अब कब तक पूर्ण हो जायेगा अमिताभ ?'

अमिताभ चौंक पड़ा। उसे जैसे किसी ने भूली हुई बात याद दिला दी हो ! कुर्सी से उठते हुए बोला—'अरे, तुमने बहुत अच्छा किया नीरजा। मैं तो सच, अब तक यह भूला हुआ ही था कि यह चित्र मुझे—' उसने कैलेण्डर को देखते हुए कहा—'आज से चौथे दिन प्रदर्शनी में भेज देना है ताकि अन्तिम तारीख तक वहाँ पहुँच जाय !

केवल चार दिन शेष रह गये हैं और देखो, मुझे इसका ध्यान तक नहीं।' अमिताभ वास्तव में चिन्तित हो उठा।

उसकी चिन्ता को लक्ष्य करते हुए नीरजा बोली—'अभी काफ़ी समय है अमिताभ ! तुम्हें इसमें करना ही क्या है ?'

'मुझे अभी बहुत कुछ करना है नीरजा !' अमिताभ ने डूबे हुए स्वर में कहा—'इसमें अभी बहुत कुछ शेष है ! आज से यदि जुट जाता हूँ तो परसों तक जाकर इसे अन्तिम 'वाश' दे सकूँगा !'

'वाश' का नाम सुनते ही नीरजा मन-ही-मन काँप उठी।

अमिताभ तीन 'वाश' पहले दे चुका था ! इस चित्र के निर्माण में उसने अपने को सुखाकर आधा कर लिया था। नीरजा ने घबड़ा कर कहना चाहा—'नहीं-नहीं अमिताभ, मैं तुम्हें अब और 'वाश' नहीं देने दूँगी......' किन्तु प्रकट में उसने कहा –'अमिताभ क्या तुमने इससे पहले भी कभी किसी चित्र में इतने परिश्रम से काम लिया था ?'

'परिश्रम की बात नहीं है नीरजा ! यह तो मेरी साधना है। यदि साधना में किसी भी तथ्य का अभाव रह जाता है तो फ़िर कला कैसी !'

'मैं कहती हूँ अमिताभ, यह तुम्हारी श्रेष्ठ कृति होगी। इस चित्र को देखकर लगता है, मानो आने वाले युग पर तुम्हारे व्यक्तित्व की छाप और भी गहरी हो चलेगी और..........!'

'बस बस नीरजा ! 'अमिताभ ने हाथ फैलाकर उसे रोकते हुए कहा–'यदि मेरी सच्ची आलोचना करके मेरा कोई लाभ नहीं कर सकती हो तो कम-से-कम मुझे अपनी झूँठी प्रशंसा और पक्षपातपूर्ण भावना द्वारा मार्ग-भ्रष्ट तो न करो ! यह कम-से-कम तुम्हें नहीं सुहाता नीरजा !'

'देखो अमिताभ !' आँखें नचाते हुए कृत्रिम रोष में नीरजा बोली—

'मेरी बात का चाहे तुम कुछ भी अर्थ लगा सकते हो, तुम्हें अधिकार है, पर यह लाँछन तुम मुझ पर व्यर्थ ही लगा रहे हो कि इस चित्र को तुम्हारी सर्वश्रेष्ठ कृति कहकर मैं असत्य की शरण ले रही हूँ !'

'मेरी अच्छी नीरजा !' अमिताभ ने प्यार से उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा—'बस नाराज हो गईं ?'

'नहीं, तो' यह कह, वह अमिताभ की आँखों में मुस्करा दी और सिर उसके वक्ष पर टेक दिया। फिर क्षणों की नीरवता के पश्चात् बोली—'अच्छा, अब चलती हूँ। सिनेमा का वादा याद रहेगा ना ?'

'ओ—ज़रूर !'

इतना सुनकर वह पुलक-मग्न-सी भाग गई !

नीरजा के जाने के कुछ देर बाद अमिताभ जाकर चित्र की 'टचिंग्स' में लग गया। पाँच दस मिनिट ही हुये होंगे कि पीछे की ओर से सुनाई दिया—'ब्युटीफुल ! ब्युटीफुल !! वाह-वाह, क्या चीज़ है···! अहा-हा·········! बनाने वाले के हाथ में जादू मालूम होता है !'

स्वर सुधीर का था ! सुधीर अमिताभ का अन्तरंग मित्र था। बहुत ही विनोदी स्वभाव का, बहुत ही मस्त प्राणी था सुधीर। आधुनिक विचारों का, एक तरक्की पसन्द और सम्भ्रान्त कुल का होता था सुधीर। स्वर को पहचानते हुए, अमिताभ ने बिना मुड़े हुए कहा—'अरे सुधीर·········आओ आओ, आज किधर रास्ता भूल गये ?'

सुधीर ने बिना अमिताभ की ओर ध्यान दिये, चित्र की ओर अनिमेष देखते हुए कहा 'चित्र का शैशव देखकर कौन कह सकता था कि आगे जाकर यह इतनी सुन्दर चीज़ बन जायगा। वृद्धा के माथे पर जो शिकनें हैं, वह, चित्र का प्राण हैं। वाह-वाह, कितनी खूबी से एक एक बारीकी को चित्र में दिखाया गया है। रेखाओं और रंगों के सहारे यह आड़ी-आड़ी शिकनें—वाह-वाह ! क्या चीज़ है !'

'अब बैठेगा भी कि बकता ही चला जाएगा ?' अमिताभ ने उसकी आस्तीन खींचकर, उसे कुर्सी पर बिठाते हुए कहा !

जब वह बैठ गया तो अमिताभ ने पुकार लगाई—'मोहन, मोहन, अरे भाई सुधीरबाबू आये हैं। ज़रा चाय-वाय………!'

'यह चाय-वाय तो सब ठीक है—'इस बार सुधीर ने अमिताभ की ओर ध्यान दिया—'पहले यह बताओ कि आप जनाव इन पाँच दिनों से थे कहाँ ?' उसके स्वर में शिकायत थी।

अमिताभ ने मुस्कराते हुए कहा—'देखते तो हो, यह तस्वीर…… !'

'अच्छाजी………तो जनाब भी इस तस्वीर के साथ तस्वीर बनकर लटक गये थे ?' सुधीर ने परिहास किया।

'यों ही समझ लो !' अमिताभ ने मुस्कराते हुए जवाब दिया।

'लेकिन एक बात समझ में नहीं आई यार !' कुछ देर बाद सुधीर बोला —'यह बुढ़ापे की तस्वीर बनाने की ख़ब्त तुम्हें हुई क्यों कर ? संसार में सौन्दर्य की, यौवन की कुछ कमी हो गई है क्या इन दिनों—अनाज की कमी की तरह ? क्या मैं यह समझ लूँ कि तुम्हारी कल्पना, तुम्हारी भावना, तुम्हारी प्रेरणा–सबने वैराग्य ले लिया है ?'

'यह बात नहीं बेवकूफ साहब ! तुम ठहरे तरक्की पसन्द आदमी।' गम्भीर होते हुये अमिताभ ने कहा–'सच सच बताओ सुधीर, क्या तुमने कभी एक पल को भी सोचा है कि तुम्हें, मुझको, हम सबको जिन्दगी की इस मंज़िल से गुज़रना है और यह कि, हर इन्सान की जिन्दगी का आखरी पड़ाव यही होता है। मुझे इन्सान की जिन्दगी की तस्वीर के इस रुख से बहुत दिलचस्पी है सुधीर। और तुम्हें भी कम्बख़्त, इससे कुछ नसीहत लेनी चाहिये………समझे ?'

'समझ गया हूँ बेवकूफ़साहब। पर यह बुज़ुर्गों की सी बातें

तुम्हारे मुँह से कुछ अच्छी नहीं लगतीं—यह सोच रक्खो। ऐसी बातें तुम्हारी जवानी से बग़ावत-सी दीख पड़ती हैं—और फिर मूर्खों के क्या सींग होते हैं?' सुधीर ने छींटा कसा।

'अच्छा जी?' अमिताभ ने उसका कन्धा ठोकते हुए कहकहा लगाया।

प्रसंग बदलते हुये सुधीर ने कहा—'कब भेज रहे हो इसे प्रदर्शनी में?'

'आज से चौथे दिन।'

'चीज़ तो बड़ी सुन्दर है, पहले पुरस्कार के योग्य। ज़रूर भेजो। कोई बेवकूफ ही हुआ तो सम्भव है हमें प्रथम पुरस्कार न मिले वरना तो मैं चैलेंज करता हूँ कि तस्वीर में कहीं भी कोई ख़ामी नहीं—'

'हाँ यही मैं सोचता हूँ कि यदि कोई बेवक़ूफ हुआ—तुम जैसा......'

'तो दावत का मजा किरकिरा हो जायगा—यही ना?' हँसी को बुलन्द करते हुए सुधीर बोला—'लेकिन विश्वास रखो, इनाम देने वाला चाहे कितना ही बेवकूफ क्यों न हो, हमारी दावत का ध्यान अवश्य रखेगा।'

अमिताभ ने भी कहकहा लगाया—'जी हाँ, जैसे मूर्ख सभी पेटू होते हैं?'

'इसमें क्या शक है। मूर्ख अधिकतर दिमाग़ का काम मुँह से लिया करता है और मुँह का सम्बन्ध सदा पेट से होता है—'

उनकी हँसी को चाय की ट्रे ने रोक दिया जो मोहन ले आया था। अमिताभ ने एक प्याला बनाकर सुधीर की ओर बढ़ाते हुए कहा—'लीजिये पेटूसाहब!'

चाय पीते हुये सुधीर ने एक कहकहा लगाया—'मुँह से ज़्यादा काम ले रहे हो अमिताभ। मुझे अब जल्दी ही तुम्हारे दिमाग़ के सम्बंध में अपनी राय बदलनी पड़ेगी।'

अमिताभ ने जोर का एक ठहाका लगाया।

इतने मे शिक-शिक की तेज आवाज के साथ, नीची गर्दन किये, हाथ मे एक लिफाफा लिये हुए, नीरजा कमरे मे घुस आई। सुधीर को जो देखा तो हक्की-बक्की रह गई। फिर जिस तेजी से आई थी, उसी तेजी से लिफाफा लिये हुए भाग गई! अमिताभ के काटो तो खून नही! उसने सुधीर के व्यग-तीरो से बचने के लिये सिर नत कर लिया।

पर सुधीर बाज आने वाला थोडे ही था। कहने लगा—'विचित्र डाकिया है, यार। बिना चिट्ठी दिये ही लौट गया?' अमिताभ ने कहा—'चाय पीओ सुधीर।'

प्याले को रखते हुए वह कहने लगा—'अबे चाय को मार गोली। पहले यह बता कि यह परी है कौन?'

अमिताभ ने कहा—'बेवकूफी छोड और चाय पी चाय!'

वह कहने लगा—'अच्छा जी तो यह बात है?'

'कैसी बात? कौनसी बात?' अमिताभ ने भवे तरेरते हुए कहा!

'कुछ नही! यही हुजूर की बढी हुई दाढी, बदहवास-बदहवास-सी बाते, धूल मे पटे बाल, पाँच-छह दिन से गैर हाजरी'

अमिताभ ने कहा—'पागल है तू! अब बहकी बहकी बाते ही करता रहेगा कि चाय भी पीयेगा?'

उसने प्याला पुन उठाते हुए कहा—'अच्छा ले, चाय पीये लेता हूँ। अब सच सच बता, यह पुखराज है कौन?'

'पुखराज—'? अमिताभ हँस दिया—'बस, यही समझ ले कि वह एक पुखराज है!'

'अब सीधी तौर से बतायेगा कि नहीं ?' प्याला पुनः मेज पर रखते हुए वह झल्लाता-सा उठ खड़ा हुआ।

'अच्छा बैठ तो सही !' अमिताभ ने उसे बिठाते हुए और उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा !

जब वह बैठ गया तो अमिताभ को हारकर कहना ही पड़ा कि यह मेरी पड़ोसिन है, कि इसका नाम यह है, कि यह मुझे संसार भर में सबसे अधिक प्रिय है, कि यह चित्र इसी लड़की की वृद्धा माँ का है और यह भी कि सुधीरसाहब इस लड़की को लेकर कहीं और-और अर्थ नहीं लगा बैठें !

बात सुनकर सुधीर ने एक लम्बी ठंडी साँस भरी, फिर अमिताभ की रानों पर हाथ मारते हुए कहा—'सच यार, हो बड़े भाग्यवान् ! पूरे जादूगर हो जादूगर !' फिर कुछ रुककर कृत्रिम रोष में कहने लगा—'लेकिन जनाब, यह इधर सब होता रहा और यहाँ खबर तक नहीं ? इस दुराव के क्या मानी ?'

'दुराव की बात नहीं सुधीर !' स्नेह भरे स्वर में अमिताभ ने कहा—'मुझे गलत समझने की चेष्टा न करो दोस्त ! विश्वास करो, अब तक यदि कुछ भी महत्त्वपूर्ण बात होती तो मैं तुमसे कुछ भी नहीं छिपाता········और साथ ही तुम तो जानते ही हो कि हमें किसी की ज़िन्दगी से खेलने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है और न हमें वैसा करना ही चाहिये !—हाँ, अब कुछ किस्मत बनती दिखाई दे रही है। देखो·········!'

'तो फिर इस लड़की को लेकर क्या फ़ैसला किया है ?'

'तुम ही बताओ सुधीर, मुझे क्या करना चाहिये ?'

'शादी। बस, तुम जैसे साधु पुरुष के लिये यही एक जवाब है मेरा। हाँ, मेरी बात छोड़ो।' मुस्कराते हुए सुधीर ने कहा।

'यही मैंने सोचा है !' अमिताभ बोला !

'लड़की बहुत सुन्दर है। आई तो चकाचौंध-सी मच गई ! सच, लड़की बेपनाह खूबसूरत है !'

'माफ़ कीजिये सुधीरसाहब मैंने आपसे इस सम्बन्ध में कोई राय नहीं माँगी है।' अमिताभ ने चुटकी ली !

'अच्छा तो हुज़ूर को इतना गुमान ? हाँ भाई क्यों न हो ? चीज ही ऐसी है।' सुधीर ने भेदभरी मुस्कान लुटाते हुए कहा।

कुछ देर बाद वह जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। कहने लगा—'देख, इस लड़की को जल्द-से-जल्द भाभी की शक्ल में देखना चाहता हूँ। सुन लिया ?'

'जी हुज़ूर—अमिताभ ने जवाब दिया।

'अच्छा, देख तो एक बात और है। यह बता नैनीताल चलेगा ? अगले सप्ताह जा रहा हूँ।'

'क्यों कुशल तो है ?' अमिताभ ने पूछा !

'वैसे ही, मैंने सोचा, इस बार गर्मी वहीं बिताई जाय ! सच, तू चला चले तो लुत्फ़ रहे। तेरे लिये पग-पग पर वहाँ प्रेरणा बिखरी पड़ी है। लौटते समय भाभी को भी लाना है। काम का काम हो जायगा और सैर की सैर। सच कहता हूँ, जगह क्या है, जन्नत है जन्नत !'

'मैं नहीं जा सकूँगा सुधीर ! मैं··· ·····'

'फिर वही मैं—? मैं कहता हूँ, जल्द शादी कर ले। मुझे यह टैं-टैं कतई पसन्द नहीं। ऐसा भी क्या इश्क मेरे यार, कि मर्द पर बुर्का डाल दे ?'

'इस बार नहीं सुधीर ! अगली बार कहेगा तो तेरे साथ जहन्नुम भी हो आऊँगा·········' अमिताभ ने अनुनय की ?

अमिताभ जानता था कि सुधीर बहुत ज़िद्दी है। यदि इसके एक बार जँच गई तो फिर यह कभी नहीं छोड़ेगा। और वह नीरजा के वियोग की यातना कभी भी सहने को तैयार न था! सुधीर ने भी आखिर बात पर अधिक जोर न दिया, कहा—'अच्छा जा, इस बार मोहलत दी। लेकिन चिट्ठी तो लिखेगा ना ?'

'चिट्ठी' का अर्थ समझते हुए अमिताभ ने मुस्कराकर कहा—'जरूर जरूर! पर यह तो बता, कि वहाँ से लौटेगा कब तक ?'

यही मार्च के आखिर में! तेरी स्कूल खुलने से पूर्व !'

'अच्छी बात!'

'भूलना नहीं बच्चू, मेरे आते ही दो-दो दावतें तुम्हारी गर्दन पर उधार हो जायेंगी!' दरवाजे से निकलते निकलते सुधीर ने कहा—'एक डूबती हुई परछाँई की और एक.........'डाकिया' की!'

'अच्छा...अच्छा......' अमिताभ मुस्करा दिया!.........

सुधीर के जाने के बाद अमिताभ देर गये तक सोचता रहा—'डाकिया.........डाकिया'। यह नीरजा भी विचित्र लड़की है 'शिक-शिक' करती कमरे में घुस आई। आज तक तो सुधीर को दिखी नहीं, और आज देखो न, सहसा दिख गई जबकि आशा ही न थी। देखो न, कम्बख्त कहने लगा—'यह दुराव है मेरा! भला, उससे दुराव करूँगा मैं? पागल कहीं का.........! रूमानी शक्स!'

'डाकिया!'......'पुखराज!'......अमिताभ हो-हो हँस पड़ा। कितना सुन्दर नाम दिया है—डाकिया......दस-एक मिनिट बाद नीरजा उसके सम्मुख थी। लिफ़ाफा देते हुये कहने लगी—'यह कौन थे ?'

लिफ़ाफा खोलते हुए अमिताभ ने कहा—'मेरा अभिन्न मित्र सुधीर। बड़ा दिलचस्प आदमी है। रोते को भी हँसा दे, ऐसा।'

'हूँ ! चिट्ठी कहाँ से आई है ?'

'नैनीताल अपने साथ ले जा रहा था। मैंने ना कर दी।'

'क्यों ?,

'वैसे ही।'

'हूँ।'

'हूँ—क्या ?'

'कुछ नहीं। चिट्ठी कहाँ से आई है ?'

'मैंने कहा उससे कि नीरजा के वियोग की कल्पनामात्र मुझे अह्यय है……।'

'बाप रे।' नीरजा चौंककर दूर हो गई—तुम्हें ऐसा कहते हुए लाज नहीं आई ? क्या सोचा होगा उन्होंने भी ?'

'वह सब जान गया है। वह मेरा अन्तरंग मित्र है।'

'…………'

'चिट्ठी……?' उसने चिट्ठी को लिफ़ाफे में डालते हुए कहा—'यह तो दीदी रेखा की चिट्ठी है। बुलाया है मुझे। लिखा है कि सूरत देखे पूरा वर्ष होने आया।…लिखा है कि पिताजी काफ़ी जर्जर हो चले हैं, काफ़ी याद करते हैं।…लिखा है कि दुनिया में भला, ऐसा भी निठुर भैया होता है कहीं ?'

'तो तुम हो आओ न अमिताभ ?' रूँआसी होकर नीरजा बोली !'

'कहाँ ?'

'दीदी के पास ! पिता के पास ! सच, हो आओ न अमिताभ !'

'क्यों ?' असहिष्णु स्वर में अमिताभ बोला !

नीरजा एक बारगी सहम उठी ! कुछ क्षण पश्चात् बोली—'कब जा रहे हो ?'

'अभी नही—'कुछ क्षण के मौन के पश्चात् अमिताभ बोला ।

फिर नीरजा के कपोलो को अपने हाथो मे लेते हुए उसने कहा—'अभी नही नीरजा ! चलेगे एक दिन ! अवश्य चलेगे ! साथ-साथ इकट्ठे ।'

नीरजा के हृदय की छिपी हुई लौ सहसा प्रबल हो उठी !

उसके माथे पर बारीक बारीक स्वेद कण उभर आये उसकी श्वासे तीव्र गति से चलने लगी और सुख के आवेश मे उसने आखे मूँद ली ।

६

पहला शो छूटते ही मानो हड़कम्प-सा आ गया । आस-पास का वातावरण अस्थिर हो उठा ! मोटरो का धुँआँ, दिलो का धुँआँ, प्रेमियो की आहो का धुँआँ ! सौदर्य और रूप की चिनगारियाँ, व्यापार की आग और गरीबी के शोले ! शहर पल भर के लिये चहक उठा, जगमगा उठा ! समस्त जीवन जैसे सिमट कर सिनेमा-घर के आस-पास एकत्र हो गया था । मानो आज के युग मे जीवन का महत्त्वपूर्ण अङ्ग सिनेमा और मनोरजन ही हो । मानव की वर्तमान भावना और विचार-धारा का प्रतीक !

रात मे जब नीरजा ने पिक्चर के सम्बन्ध मे बात चलाते हुए अमिताभ की आलोचना जाननी चाही तो उसने कहा—'बिल्कुल निकम्मी तस्वीर है । यो समझ लो कि तीन घटे की सख्त कैद थी और दो रुपये चार आने का जुर्माना—'यह कह, वह मुस्कराया, फिर गम्भीर होते हुए बोला—'नीरजा, पिक्चर की क्या, यदि गौर से देखे

तो पता चलेगा कि दुनिया की हर चीज़ तेज़ी से पतन की ओर अग्रसर हो रही है ! पुरुष-नारी, समाज-सियासत, कला, विज्ञान, आचार-विचार साहित्य और कानून सभी द्रुतवेग से पाप के अँधेरे रास्ते पर बढ़े चले जा रहे हैं। इन्सान ने समाज और सियासत को जन्म दिया, साहित्य रचा, कला और विज्ञान के जाले बुनकर संसार पर बिछा दिये, आचार-विचार को नित्य नया रूप और रंग दिया, धर्म के लिये, लड़ाइयाँ लड़ीं, कानून द्वारा दुनिया को डराया किन्तु उसी इन्सान के पतन के साथ-साथ उसकी कृतियाँ, उसके निर्माण अस्त-व्यस्त हो चले। चाँद, सूरज और सितारों पर इन्सान का शासन न चल सका वरना वह उन्हें भी बदल देता। समाज की जिस नींव पर आज हम खड़े हैं, वह इतनी ढीली है कि प्रतिपल गिर पड़ने का डर लगा रहता है। यदि ठीक भट्टियाँ न बनीं, ठीक आँच न मिलीं तो हम कच्चे बर्तनों की भाँति टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे और टुकड़ों से जो दूसरे बर्तन बनेंगे वह भी बर्तन न कहलायेंगे क्योंकि वह बर्तन का काम ही न दे सकेंगे। आँच वही है पर भट्टियाँ गलत हैं ! इसलिये आँच-आँच में भी फ़र्क हो गया है और बर्तन-बर्तन में भी………'

बात पर नीरजा मुग्ध हुऐ बिना न रह सकी। मन-ही-मन पास चलते हुए अमिताभ पर उसे गर्व हो उठा ! वह मौन बनी सुनती रही !

अमिताभ कहता गया—'समाज का सम्पूर्ण प्रवाह अन्तर्मुखी हो रहा है और इसी मे अन्तर्निहित सत्य को न समझ सकना स्वाभाविक ही है नीरजा। यह प्रवाह ही इसके लिए दोषी है, मस्तिष्क नहीं। मानव देश-काल के अनुसार बदलते हुए कर्म-प्रवाह में क्षण-क्षण नूतन रसानुभूति करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है जिसमें वह अपने अ.. को सर्वथा भुलाये हुये है, जिसमें उसे अतीत की आवश्यक चिन्ता नहीं करनी पड़ती क्योंकि प्रति पल, एक एक क्षण उसकी समग्र शक्तियाँ कर्त्तव्य के नित्य नवीन प्रवाह में प्रभावित हो रही हैं—ऐसी परिस्थिति

मे नही कहा जा सकता कि विश्व के मृतप्राय, मूक और भयानक विस्ताररूपी प्रलय मे जिन्दगी की झिलमिलाने वाली चचल ज्योति कब बुझ जाये ? समाज और देश का कब तक अध पात हो जाय ?'

नीरजा दबे हुए स्वर मे बोली—'हॉ, यदि हम न बदले तो रास्ते हँसेगे। यदि रास्ते बदल गए तो हम हँसेगे। दुनिया के, मेरी समझ मे, सभी प्राणी एक है—सभी चूल्हे एक है पर आँच अलग-अलग है !'

अमिताभ कुछ कहे, इससे पूर्व ही पडौस के फुटपाथ से आवाज आई—'नीरजा ! मुबारक हो !'

अमिताभ के पैर सहसा रुक गये ! चौककर जैसे ही उसने फुट-पाथ की ओर देखा, दो युवा लडकियाँ साइकिल पर फुटपाथ के सहारे से तेजी से निकल गई ! देर गये तक, अमिताभ उस फिकरे को पकडे हुए उस दिशा मे देखता रहा और फिर जैसे ही उसने नीरजा की ओर दृष्टि घुमाई, नीरजा विवर्ण हो उठी !

मुस्कराते हुए अमिताभ ने पूछा—'यह लडकी कौन थी नीरजा ?'

'मेरी सहेली है एक—,विकम्पित स्वर मे नीरजा बोली—'बहुत ही शोख है ।'

'हूँ !' अमिताभ मुस्कराया—'और यह मुबारकवादी किस बात पर दी जा रही थी ?'

'मैं क्या जानूँ ?' आँखो को पलको की ओट मे छिपाते हुए नीरजा ने कहा !

'हूँ !' अमिताभ सुख से भीग गया ! उसने नीरजा के कोमल हाथ को अपने हाथ मे ले लिया और कहा—'तुम बडी सुन्दर हो। तुम बडी झूठी हो ! तुम '

नीरजा खिंची हुई उसके पास चली आई !

दोपहर को 'डूबती हुई परछाँई' को अम्मा के कमरे में ले चलने को कहते हुए, अमिताभ ने मोहन से पूछा—'नीरजा कहाँ है ?'

'वह तो कहीं बाहर गई हुई है सरकार !' उसने बताया !

'तुझे कैसे मालूम ?'

'मैंने अभी-अभी उन्हें बाहर जाते देखा था ! बहुत उदास दीख पड़ रही थीं साहब !'

'उदास दीख पड़ रही थीं ? कैसे ?' अमिताभ चौंका !

मोहन मौन हो गया ! प्राय: निरुत्तर भी !

'अच्छा जा, अम्मा से कहना कि मैं आ ही रहा हूँ । वे तैयार रहें !'

'जी अच्छा !'

कुछ देर बाद अमिताभ ने अम्मा के कमरे में प्रवेश करते हुए सदा की भाँति स्नेह से पुकारा—'माँ !.........'

माँ सिर नत किये बैठी थीं सो सिर नत किये ही बैठी रहीं–एक निष्ठ, जड़वत, मौन !

अमिताभ को आश्चर्य हुआ । उसने निकट पहुँचकर पुन: पुकारा—'माँ !'

माँ अब भी मौन ही रही तो अमिताभ को हैरानी हुई ! उसने परेशान होते हुए कहा—'माँ, क्या बात है माँ ? बोलो ना.........'

इस पर माँ ने अपनी दृष्टि अमिताभ पर डाली ! उनकी दृष्टि उस पर पड़ते ही एक कँप-कँपी-सी उसके रोम रोम में फैल गई और वह एक हल्की चीख के साथ दूर हो गया। उसने देखा, उनकी पेरशानी पर आड़ी-आड़ी शिकनों के बीच आज एक नयी शिकन थी—बहुत ही कुरूप, बहुत ही घिनौनी ! दोनों भवों के बीच गोश्त इक्ट्ठा हो गया

था और उसने एक तिरछी शिकन बना ली थी ! उसने देखा, वह शिकन ही थी । एक ऐसी शिकन, जिसमे माँ की पेशानी की सारी श्री, सारी सुन्दरता लुप्त हो गई थी । एक ऐसी शिकन, जिसने माँ के मुख-मण्डल को भौडा और वीभत्स बना दिया था । एक ऐसी शिकन, जिसका उसकी तस्वीर मे कोई अस्तित्व ही न था । एक ऐसी शिकन, जिसने नया ही जन्म लिया था ! पहली शिकन !

उसने ध्यान से देखा, वह शिकन ही थी ।

उसने निकट जाकर देखा, वह शिकन ही थी !

उसने माँ की पेशानी को छू कर देखा, वह शिकन ही थी ।

उसने उसे मिटाना चाहा, पर वह नही मिटी । मिटमिटकर भी वह बन रही थी । वह काँप उठा ! उसने विचित्र से विस्मय और दु ख की यातना मे छटपटाते हुए कहा—'माँ यह शिकन, कैसी है माँ ?'

माँ नीरव ही रही । वह तो आज जैसे चट्टान बन गई थी !

अमिताभ ने कराहते हुए कहा—'माँ, यह शिकन मिटनी चाहिये । यदि यह नही मिटी तो मेरी तस्वीर अधूरी रह जाएगी ! और यह तस्वीर अधूरी रह गई तो मेरा जीवन, मेरी मेहनत, मेरी कला, सब बेकार हो जायेगी, माँ ।'

माँ अब भी कुछ नही बोली ! उनकी आँखो मे वेदना की छाया और भी गहरी हो चली !

इधर, अमिताभ के हाथ-पाँव जल रहे थे । उसकी कनपटियो के लवे तप रहे थे । उसके गाल तमतमा रहे थे । वह माँ के पैरो मे गिरकर गिडगिडा उठा—'बोलो माँ, बोलो' इस शिकन का आदि क्या है और अन्त क्या ? बोलो माँ, मेरी यह बनाई हुई तस्वीर पूरी होने

के लिये, शाहकार बनने के लिये तुम्हारे शब्दों की प्यासी है, मोहताज है माँ। कुछ तो बोलो··· ··मैं हाथ जोड़ता हूँ······!'

इस पर······इस पर माँ ने उससे कुछ कहा। उससे माँ कुछ कहती रहीं। क्या कहा, उसे याद नहीं। उसे उतना ही याद रहा कि कि वह कुछ कहती रहीं और वह 'हाँ' कहता गया। और···फिर···उसे पता नहीं वे कब उसके पास से उठकर चली गईं, कब वह अपने कमरे में आया, कैसे आया—उसे कुछ पता नहीं ! उसे कुछ पता नहीं ! उसे केवल इतना याद रहा कि माँ ने उससे कुछ कहा था, कहा था···कि तूने ही वह शिकन दी है, तू ही इसे मिटा सकता है। तू हमारे कुल का नहीं है बेटा !

कुल ! कुल !! कुल !!!

और अब उसे होश आया तो वह कमरे में हू-हू रो पड़ा। उसे अनुभव हुआ जैसे वह लुढ़कता हुआ ऐसा पत्थर है, जो अपनी गूँज गहरी और वीरान घाटियों में छोड़ जाता है। वह ऐसा टूटा हुआ तारा है, जो पथ-भ्रष्ट-सा एक आग की लकीर खींचता हुआ शून्य में विलीन हो जाता है। वह एक ऐसा अभागा फूल है, जिसे निर्दयतापूर्वक अपने हमजोली से जुदा कर दिया गया है। वह एक ऐसा स्वप्न है, जो रात के दूसरे प्रहर में आता है और अपनी धूमिल याद छोड़ जाता है ! वह स्वप्न है—केवल स्वप्न !

उसके आँसू सूखते ही न थे। उसकी आँखों की बरसात थमती ही न थी। उसकी आँखों पर रह रहकर एक धुंध एक धुँआँ-सा छा जाता था—कुछ वैसा धुँआँ जैसा कि एक लम्बे मैदान पर शीतकाल की वर्षा के बाद सुबह ही सुबह छा जाती है। उसका दम घुट रहा था। उसे लग रहा था मानो उसके बाल पकड़कर कोई उसे पथरीली जमीन पर घसीट रहा हो। जैसे कोई उसके शरीर पर लोहे की गर्म-गर्म

सलाखे रख रहा हो। जैसे सैकडो चेहरे उसे हिकारत से देखते हुए कह रहे हो—'तू हमारे कुल का नही है। तू हमारे कुल का नहीं है।'

और वह स्वल्प चेतन मे चीख पडा—'तो मैं कौन हूँ ? मै क्या नीच हूँ ? क्या मैं इन्सान नही ? क्या कुल मनुष्यता से भी बडा है ?'

देर गये तक उसका वही हाल रहा। आँसुओ पर किसी प्रकार काबू रखकर वह घर से निकल पडा। बस, विक्षिप्त-सा पैरो की प्रेरणा पर चलता रहा।

पूनम के चाँद ने चारो ओर अपनी माया फैला रखी थी। और पूनम की चाँदनी रहरहकर उसके कान के समीप मुँह लाकर जैसे कह रही थी—'तू हमारे कुल का नही है।'

उसके मुख पर सुइयाँ-सी चुभने लगी। उसने कराह कर चाँद की ओर से मुँह फेर लिया। एक चीत्कार अकुलाता हुआ हौले से उसके होठो से फूट पडा—चाँद, मुझे सताना क्या तुझे भी आज ही सूझा है ? मैंने अनेक चित्रो मे तेरी छवि अकित की है, तुझे शान्ति का प्रतीक सिद्ध करने का यत्न किया है। और आज तू ही मुझे सता रहा है। क्या तुझे तनिक भी लज्जा नही आती, ओ पूनम के चाँद ?'

'कुछ क्षण पश्चात् वह ताजमहल के निकट से गुजरा। बरबस एक विचार उसके मस्तिष्क मे कौध उठा। वह ठिठककर वही खडा हो गया और खोया-सा ताज को देखने लगा।

यमुना मथर गति से बहे जा रही थी। श्वेत मीनारें दूध मे नहाई हुई प्रतीत होती थी। अमिताभ कभी मकबरे को देखता था और कभी उन चार मीनारो को। वह अस्फुट से स्वर मे बडबडाया—'एक महान् यज्ञ, ससार की शिल्पकला के इतिहास के उस महान् दिवस तथा शाहजहाँ की वर्षों की साध का प्रतीक—यह समाधि है, वह पवित्र प्रेम

की वेदी, जिस पर अपने प्रेम की अंजलि शाहजहाँ ने एक रोज़ अर्पित की थी…… ! पत्थर की इस सुन्दर समाधि में एक स्मृति विद्यमान है ! शाहजहाँ ने उस निराकार मृत्यु को अक्षय सौन्दर्य परिपूर्ण स्वरूप प्रदान कर दिया—मानव के अस्थायी प्रेम को स्थायी कर दिया। इस इमारत की एक-एक दीवार इसका एक-एक पत्थर सिसक रहा है ! यह दबी-दबी आहें—न जाने किस व्यथा की प्रतीक हैं।…… ……'

'समाधि………पवित्र प्रेम ………दबी-दबी आहें…… …! तो क्या प्रेम सदा रोता रहा है ? तो क्या प्रेम कभी हँसता नहीं ?…………प्रेम … … कुल………प्रेम………।'

अमिताभ को लगा जैसे वह पागल हो जायेगा। उसने आँखें मूँद लीं और आँसुओं के वेग को सम्भालता हुआ कुछ देर बाद वहाँ से चल दिया। दो-ढाई घण्टे सड़कों पर पागलों की भाँति घूमता रहा और फिर जब पूर्णतया थक गया तो लौट आया।

सब सो चुके थे। उसने सुख की ठंडी साँस ली। नीरजा के कमरे से हल्का-हल्का प्रकाश आ रहा था। वह दबे पाँव अपने कमरे में आ गया और भीतर से द्वार बन्द कर लिये। बिना कमरे में रोशनी किये वह वैसे ही पलंग पर गिर पड़ा। एक आवाज थी जो बराबर उसका पीछा कर रही थी—'तू हमारे कुल का नहीं है……तू हमारे कुल का नहीं है !' वह वेदना के डंकों से क्षत-विक्षत हो उठा !

कोई आध घण्टे बाद, उसने बाहर किसी की आहट सुनी। उसकी साँस फूलने लगी और कंठ अवरुद्ध हो चला ! कुछ देर आहट-सी आती रही फिर किसी ने पुकारा—'अमिताभ ! अमिताभ !'

'नीरजा ……।' उसने कसकर आँखें भींच लीं !

नीरजा ने पुनः दस्तक देते हुए पुकारा—'अमिताभ ! दरवाज़ा खोलो। अमिताभ ! देखो, मैं हूँ—नीरजा।'

अमिताभ ने तकिये में मुँह छिपा लिया। कोई उससे कह रहा था—'तू हमारे कुल का नहीं है······'

नीरजा कुछ देर पुकारती रही, आखिर थककर चुप हो गई। इतने-में किसी और शक्स की आहट आई। और फिर स्वर—'क्या बात है बीबीजी ?'

स्वर मोहन का था।

अमिताभ धड़कते हृदय से सुनने लगा।

नीरजा कह रही थी—'क्या बात हो गई है मोहन ? तू कुछ जानता है ?

'नहीं तो बीबीजी, क्या हो गया है ?' मोहन का घबराया हुआ स्वर आया।

'पता नहीं रे—' नीरजा का स्वर भर्रा उठा 'क्या हो गया है, पता नहीं। मैं कब से उन्हें पुकार रही हूँ और देख तो वे दरवाजा बन्द किये हुए हैं। न जाने क्या हो गया है·········!'

इस पर मोहन कुछ देर पुकारता रहा—'छोटेबाबू ! छोटेबाबू।' अमिताभ ने मुँह हाथों में ढाँप लिया।

आखिर मोहन भी थककर चुप हो गया। जब मोहन भी थक गया तो नीरजा सुबकती कह गई—'ज़रूर कुछ हो गया है मोहन, ज़रूर कुछ हो गया है। पर यह हो क्या गया है ?·········'

उसके बाद ख़ामोशी।

मोहन का दीर्घ निःश्वास ! लौटते हुए कदमों की आवाज़। और बस...······।

अमिताभ पलंग पर गिरकर छटपटा उठा।

दूसरा दिन भी गुजर गया ।

कितनी कठिनाई से गुजरा था वह दिन, यह अमिताभ ही जानता था । दिन भर मारा-मारा फिरता रहा था—एक ही रास्ते से कई बार गुजरा था पर फिर भी स्थिरता नहीं आ पाई थी । सुबह ही घर से निकल पड़ा था और अब रात हो गई थी । गुजरने को तो उम्रें गुज़र जाती हैं, पर आज वह दिन भर यही सोचता रहा था कि एक दिन कितना दीर्घ, कितना विशाल है । मानो, एक युग हो । और इस एक दिन में उसने कितनी बार अपने को मारा था और कितनी बार अपने को जन्म दिया था, यह वही जानता था । बस, वह इसी निर्णय पर पहुँचा कि इन्सान रोज ही मरता है, दिन में कई बार मरता है फिर भी जीवित है । वह झीनी मोह-जाल की चादर, जो इन्सान ने खुद अपने गिर्द बुनी है ताकि वह उसमें अपने को अच्छी तरह फैला सके, अपने स्वार्थ को उसमें बिठा सके—कितनी मज़बूत चादर है । इस चादर को चाहकर भी त्याग सकना, इन्सान की सबसे बड़ी परवशता है । और इसी पर वह बहुत रोया था !

मन बहुत उदास था । क्यों उदास था ? क्यों उदास होना चाहिये उसे ! इसका वह चाहकर भी विश्लेषण नहीं कर सका । केवल इतना ही जान पाया कि उसके जीवन का आधार विलीन हो गया है, उसके जीवन का 'प्राण' खो गया है कहीं । तभी, वह सोचता—प्रपंच है यह, धोखा है यह सब । खोना, पाने का ही दूसरा नाम है । और जब उसने यह सोचा, उसे कुछ शान्ति मिली, कुछ-कुछ स्थिरता आ पाई उसमें और स्थिरता के उस काल में उसका मन हुआ कि चलूँ, नीरजा से मिल लूँ ! उसे त्रास देना मुझे इष्ट नहीं—और न वैसा अधिकार ही मुझे प्राप्त है । कल से वह काफ़ी वेदना पा रही है । अपने साथ कठोर

रहे कर [illegible]ने उससे भी कठोरता से काम लिया है और यह कुछ अच्छा नहीं किया है !......ऐसा होते ही मन की पुकार पर वह कई बार चल दिया, चलता ही रहा किन्तु नीरजा तक पहुँचने के पूर्व ही वह रुक गया। विचित्र-सी विवशता ने उसे जकड़ लिया और न जाने कौनसी कर्त्तव्य-बुद्धि के इशारे पर वह पुनः लौट आया। समझ में नहीं आता था, यह कैसी विवशता थी ! एक दिन जो हम में अनुप्राणित रहता है, उसी से एक दिन हम डरकर भागते हैं—तटस्थ रहते हैं, छिपते हैं, भय खाते हैं !

फिर वह सोचता कि उसका यों लौट-लौट आना अच्छा ही है, व्यर्थ नहीं है क्योंकि उसे 'व्यर्थ' कहने से तो जीवन का अर्थ ही व्यर्थ हो जायेगा। वह नीरजा के पास जाकर करेगा भी क्या ? वह जानता था कि जो परिस्थिति आ गई थी, उसे सुधारने की क्षमता उसमें न थी, फिर वहाँ जाकर वह करे भी क्या ? और इसीलिए वह लौट-लौट आता था।

इस पर एक तीव्र-सा विचार कि यह जो कुछ उसकी ओर से हो रहा था, कहाँ तक अच्छा—कहाँ तक न्याय-संगत और क्षम्य था, उसे विचित्र-सी जड़ता से भर रहा था। वह उसे ठेल-ठूलकर पूछता था—तो फिर अच्छा क्या है ? सत्य क्या है, क्षम्य क्या है ?

इसका उत्तर न जाने उसे कौन सिखा गया था। कहने लगा—दुनिया में सब कुछ धोखा है। मनुष्य स्वयं एक धोखा है। यहाँ, इस संसार के बीच, सत्य यदि कुछ है, भव्य यदि कुछ है तो बस कर्म ही है। यदि और स्पष्ट करके कहूँ तो सुनो, तुम्हारी साधना, तुम्हारी कला—बस यही सत्य है। आज के बहे हुए तुम्हारे आँसू, आज का निकला हुआ तुम्हारा यह अकुलाया हुआ उच्छ्वास ही बस, सत्य है अमिताभ।

इस आश्वासन के सहारे कितनी ही बार उसने अपने अस्थिर और

बिखरे हुए विचारों को समेटा, कितनी ही बार उसने चित्र को पूरा करने का संकल्प किया किन्तु उतनी ही बार वह चित्र उसे असभ्य और अपूर्ण जँचा। वही एक शिकन……। जैसे उस अकेली एक शिकन ने उसकी कला, उसकी मेहनत—उसके जीवन, सबको बेकार कर दिया था। जैसे वह एक शिकन ही—बस, सत्य थी और सब असत्य !

वह शिकन मिटनी चाहिए, वह शिकन मिटनी चाहिए। उफ, वह शिकन……।

और इसी उथल-पुथल में दिन गुज़र गया था और रात आ गई थी !

सुबह, जबकि कोई जागा भी न था और बाहर सड़कों पर इक्के-दुक्के भंगी सड़कों को साफ़ करता हुआ दिखाई दे रहे थे, वह घर को खुला छोड़कर चल दिया था ताकि मोहन आवे तो परेशान न हो। नीरजा आवे तो परेशान न हो।……और अब रात आ गई थी। अधिकतर लोग सो चुके थे। बाकी जो थे सोने की तैयारी में थे, अमिताभ बहुत उदास और बोझिल लौट रहा था ! उसका मन बहुत ही भारी-भारी था ! लगता था जैसे कुछ खो गया है !

रातें वही थीं, दिन भी वही। तारों की आँख-मिचौनी आज भी कितनी सुन्दर दीख पड़ती थी। हवा आज भी कितनी खुशगवार थी—कैसी भीनी-भीनी मानो किसी नव यौवना के खँगाले हुए बालों से उठ-उठ कर आ रही हो। कितनी महक थी, कैसी अपार शान्ति ! इतना होते हुए भी अमिताभ को लगता था जैसे कुछ खो गया है। लगता था जैसे यह वे रातें नहीं, यह दिन भी वह नहीं। इन रातों में झुलसन थी, पीड़ा थी। तारे अंगारे जान पड़ते थे और हवा विधवा की तरह भटकती हुई बौखला रही थी। जैसे-जैसे प्रकृति की सारी छटा में असंख्य शिकनें पड़ गई थीं—असंख्य शिकनें !

घर आ गया था। नीरजा का घर! कैसा नीरव और निस्पन्द पड़ा था! वहाँ की सारी चंचलता, वहाँ का सारा लावण्य, वहाँ का सारा माधुर्य जैसे-जैसे सिमटकर सदा के लिये कहीं विलीन हो गया था। और और यह उसका कमरा था। खुला हुआ कमरा। भीतर प्रकाश। उसने सोचा था, मोहन सो चुका होगा पर वह जाग रहा था। अब?

'छोटेबाबू!' जैसे मोहन की समस्त वेदना उमड पड़ी हो!

'हाँ मोहन।' वह इतना ही कह सका और बोझिल-सा पलग पर गिर पड़ा!

'आपको क्या हो गया है छोटेबाबू? आप दिन भर से कहाँ थे छोटेबाबू? न कुछ खाया है, न पिया आपके यह एक ही दिन में क्या हाल हो गये हैं छोटेबाबू?'

'मुझे कुछ नहीं हुआ है मोहन, मुझे कुछ नहीं हुआ है। मैं तो वैसे ही एक काम से गया हुआ था। और यह तू अब तक जग क्यों रहा है? तू जाकर सो सच, मुझे कुछ भी तो नहीं हुआ है। तू चिन्ता न कर।'

'जब तक आप कुछ खायेंगे नहीं छोटेबाबू, मैं नहीं सोऊँगा। आपकी यह हालत मुझसे नहीं देखी जाती छोटेबाबू।'

'हालत? कैसी हालत रे?' वह कहने को हँस दिया—'ठीक तो हूँ मैं। देख, कहाँ क्या हुआ है मुझे? ज़रा थक गया हूँ अलबत्ता और नींद भी '

'आप जरूर कुछ छिपा रहे है छोटेबाबू। जरूर कोई तूफान आया नज़र आया है!' मोहन ने भय-विकम्पित स्वर मे कहा।

'तूफान? तू तो पागल है। तू नहीं जानता, तूफानों की उम्र कम होती है। अच्छा, तू अब सो जाकर। मुझे भूख नहीं है!'

'यह नहीं होगा छोटेबाबू। चाहे दो निवाले ही खा लें पर खायें ज़रूर। मैं आपको भूखा नहीं सोने दूँगा !'

मोहन का वह अनुनय-विनय अमिताभ को आखिर रखना ही पड़ा। उसने दो कौर मुँह में रखे ही थे कि मोहन ने कहा—'बीबीजी की हालत बहुत खराब है छोटेबाबू'—कौर उसके गले में फँस-सा गया। उसने थाली सरका दी।

'दिन भर से रो-रोकर बुरा हाल कर लिया है उन्होंने अपना !'

अमिताभ ने चाहा कि वह बहरा हो जाये। कुछ देर बाद मोहन उसके पास से चल दिया। रह गया वह और उसके आँसू और वह लम्बी, सूनी रात !

सूनी-उदास रात ! और अमिताभ !

इसी प्रकार, उसने दो दिन और गुज़ार दिये। इन दोनों दिनों में वह अपने को कितना छिपाता फिरा, यह वही जानता है। इन दोनों दिनों में उसे कितनी पीड़ा हुई, कितनी वेदना लगी—इसका वर्णन कठिन है।

अब, पुराने सभी शोक, ताप-विच्छेद भुलाकर एक ही इच्छा उसके भीतर जन्म ले रही थी कि चित्र पूर्ण हो जाये, किसी प्रकार वह चित्र नियत समय पर प्रदर्शनी में पहुँच जाये, किसी प्रकार वह शिकन अस्तित्व-विहीन हो जाये, किसी प्रकार वह अपने चित्र को अन्तिम 'वाश' दे सके। प्रतिपल उसकी यह इच्छा सबल और वेगपूर्ण होती जा रही थी। ज्यों-ज्यों समय गुज़र रहा था, उसका दिल बैठता जा रहा था। वह चाहता था। समय रुक जाए—एकदम रुक जाये ताकि उसकी इच्छा पूर्ण हो सके। वह जानता था। यह उसका अपना स्वार्थ है। स्वार्थ था तभी तो वह चित्र की पूर्णता के सम्बन्ध में इतना चिन्तित हो उठा था, वरना, वह चित्र के टुकड़े भी तो कर सकता था, वह उसे जला कर

राख भी तो कर सकता था। पर नही, उसने ऐसा कुछ नही किया। वह चित्र की पूर्णता देखना चाहता था। वह इस बात के लिए उत्सुक था कि वह चित्र कितना सफल होता है—वह शाहकार बनता है या नही।

विचित्र-सी उदासी घिर रही थी। उसके अन्दर की टीस अब गहरी हो चली थी। वह दर्द से अब क्षत-विक्षत हो उठा था। वह अब प्रत्यक्ष मे वह शिकन देखना चाहता था कि वह एक शिकन मिटी है या नही। देख चुकने के बाद पर देख सकना सम्भव कैसे हो!

इसी समस्या मे वह प्रतिपल घुल रहा था। वह कमरे मे अभी कुछ देर पूर्व ही आकर बैठा था। भीतर से द्वार बन्द थे। मोहन जा चुका था। आस-पास सब सो रहे थे। उसने भी अपने कमरे का प्रकाश बुझा दिया था। वह प्रकाश से डरने लगा था। वह पलग पर पडा कुसमुसा रहा था। एक बार, केवल एक बार देखना चाहता था कि वह शिकन मिटी है या नही। पर कैसे देखे?

इतने मे बारह हल्की-सी आहट होती है।

उसका दिल चलते-चलते रुक गया। मोहन उसे खिला-पिलाकर जा चुका था फिर यह आहट? कुछ देर बाद दरवाज़े पर दस्तक सुनाई देती है।

उसे अनायास ही पसीना आ गया। काँपते हुए स्वर मे पूछा—'कौन?'

विनिमय मे बार-बार दस्तक सुनाई देती है।

उसे विश्वास हो गया नीरजा। कुछ देर समझ मे नही आया कि क्या करे, क्या नही। अन्त मे अपने ऊपर काबू पाने की चेष्टा करते हुये वह बौखला उठा—'क्षमा करे मैं इस समय किसी से नही मिल सकता—किसी से नही।' कहते-कहते वह हाँप उठा। कहना तो और भी—चाहता था पर ।

इतने में बाहर से आवाज़ आती है—'अरे खोल तो अमिताभ। यह तो मैं हूँ—अम्मा।' अम्मा कहते-कहते वृद्धा का स्वर काँप उठा। 'ओ……अम्मा……!'

अमिताभ को लगा जैसे किसी अज्ञात शक्ति ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। उसने झट से उठकर बत्ती जलाई और फिर द्वार खोल दिया।

और तब, उसने देखा—वह शिकन वहाँ न थी, वह मिट गई थी, वह मिट गई थी। वह समस्त भौंड़पन अब मिट गया था और उसके स्थान पर वही पुरानी श्री, वही पुरानी आभा झलक रही थी। वहाँ से थोड़ा हटकर, भवों से नीचे कुछ मोती से झिलमिला रहे थे और उन मोतियों में …। आगे वह न देख सका। अपार-हर्ष के उस क्षण में उसकी आँखों से आँसू वह चले और वह खुशी में पागल-सा बोल उठा—'माँ, अब मेरा चित्र पूर्ण हो जायगा, माँ। अब मेरा चित्र ……' और यह कह, उसने बच्चों की भाँति अपना मुँह, माँ के आँचल में छिपा लिया।

उसके बाद, माँ बहुत ही स्नेह के साथ, बहुत ही प्यार के साथ उसके सिर पर हाथ फेरती रहीं। कँपकँपाते स्वर में वह उससे कुछ कहती रहीं। वह नहीं जान सका, वह सब क्या था। उस कहने का प्रयोजन अब क्या था—उसमें उसका हित कितना, क्या था, यह वह जान सका। हाँ, चलते-चलते वह उससे कहती गई—'तूने मेरी लाज रख ली है बेटा। तूने मेरी झोली में अपना सब कुछ भर दिया है अमिताभ। भगवान् करे, तू फले-फूले। तेरा नाम रोशन हो बेटा……।

शब्दों को पकड़े वह कुछ देर नीरव खड़ा रहा और फिर लड़-खड़ाता-सा 'स्टूडियो' की ओर चल दिया। चित्र के सम्मुख बैठकर रात भर काम करता रहा।

दूसरे दिन चित्र तैयार हो गया था। उसने उसे प्रदर्शनी के लिये भेज दिया और सुख की एक साँस ली। उसका काम हो चुका था।

चित्र भेज चुकने के बाद वह बहुत देर तक डाकखाने पर खडा पागलो की भाँति सोचता रहा—अब ? अब ? अब क्या काम बाकी रह गया है ?

दूसरे दिन मसूबा बाँध कर रातोरात उसने अपनी जरूरत का सामान साथ लिया और चल पडा। उसने किसी को नही बताया कि वह कहाँ जा रहा है। उसने मोहन मे भी इस बात का जिक्र नही किया और चल दिया। वह चलता ही रहा। एक दिन, दो दिन। नई-नई जगह, नये-नये स्टेशन, नये-नये लोग। अपरिचितो के बीच, अपने घर से दूर, नीरजा से दूर वह चलता ही रहा। और एक दिन—

'अरे अमिताभ, तुम यहाँ ? अरे भाभी ओ भाभी, देखो तो अमिताभ आया है !' और दूसरे ही पल सुधीर की भाभी उसके सम्मुख थी।

भाभी कुछ कहे, इससे पूर्व सुधीर ने उसे झँझोडते हुए पूछा—'क्या बात है अमिताभ, बहुत कमजोर दिखाई दे रहे हो ? क्या बीमार रहे ?'

उसने बुझी-सी हँसी मे कहा—'हाँ, तुम्हारे आने के बाद ' और फिर प्रसग बदलते हुए भाभी से पूछा—'अच्छी तो हो भाभी ? मुन्नी कहाँ है, और सुभाष ?'

'अभी सब आये जाते है, आप अन्दर तो चलिये !' भाभी बोली।

'ओ हाँ, मै तो यह भूल ही गया था।' हो-हो हँसते हुए सुधीर ने कहा और फिर उसकी बाँह पकडकर अन्दर खीच ले गया।

मुन्नी और सुभाष को गोद मे उठाकर खूब प्यार कर चुकने के बाद अमिताभ ने अन्य कुशल-क्षेम पूछी और जब भाभी उठकर उसके

लिये खाने की तैयारी करने चली गईं तो कमरे में वह बच रह गया और सुधीर।

भाभी के जाते ही, सुधीर ने प्रश्नों की झड़ी-सी लगा दी।

'हाँ, अब बताओ, डाकिया कैसे हैं? उसे नहीं लाये यार? ले आते न। ऐसी भी क्या खुदगर्ज़ी? शादी कब कर रहे हो? अरे, यह ऐसी सूरत क्या बना रखी है? मेरा तो मातम-पुरसी को जी चाहता है। यह तुम्हें हो क्या गया है? जब से आये हो, गुमसुम से हो?—'

उत्तर में अमिताभ हँस भर दिया। मन तो हुआ कि रो पड़े।

इस पर सुधीर कहने लगा—'तुम ज़रूर कुछ छिपा रहे हो। जरूर कोई बात है। बताओगे नहीं?'

अमिताभ बोला—'कुछ बात नहीं है सुधीर। व्यर्थ शंका करने की तो तेरी पुरानी आदत है। मैं तो·······सफ़र की वजह से ही ऐसा थक गया हूँ। और कोई बात नहीं।'

'सो क्या पैदल चलकर आ रहा है?' सुधीर ने व्यंग्य कसा!

अमिताभ म्लान हँसी हँस पड़ा!

सुधीर ने दबाव डालते हुए कहा—'तू बन रहा है! झूठा है तू। मैं कहता हूँ, जरूर कोई बात है। इस तरह एकाएक आने की तुझे क्या सूझी? मैंने जब पूछा था, उस समय तो तूने ना कर दी थी। फिर यह यकायक········? सच बता, बात क्या है?'

अमिताभ बोला—'पागल है तू!'

इतने में भाभी तश्तरी में कुछ नमकीन और मीठा लिये हुए चली आईं। पीछे-पीछे चाय लिये हुए एक नौकर ने प्रवेश किया। अमिताभ ने सोचा, अच्छा हुआ, सुधीर से जान बची!·······

× × ×

शाम को सुधीर अमिताभ को माल रोड के पार एक झील पर ले गया! किनारे पर बैठने के पश्चात् सुधीर ने एक ठंडी साँस लेकर

फैलते हुए कहा—'अहा-हा, क्या जगह है! यह शफक, ये परिन्दो के झुण्ड, यह पानी का धीमा-धीमा शोर, यह डाडियो की छपछप, अपनी ही धुन मे घूमते हुए ये जोडे, ये तितलिया और पहाडियो की ओट मे दम तोडता हुआ यह सूरज। भई, अपना तो जी चाहता है कि मरे तो नैनीताल मे। यदि नही भी मरे तो कम-से-कम कब्र तो यहाँ जरूर ही बनवा लें।'

लहरो पर से अपनी दृष्टि समेटते हुए अमिताभ सक्षिप्त-सा मुस्करा दिया।

उसकी यह मुस्कराहट सुधीर को चिढा देने के लिये पर्याप्त थी। वह झुँझलाकर सीधा बैठ गया और बोला—'अजीब खुश्का है यार! जन्नत मे बैठा है और रोनी सूरत लिये? मै कहता हूँ, आखिर बात क्या है? साफ क्यो नही कह डालता, यह पहेलियाँ-सी क्यो बुझा रहा है?'

'बात कुछ भी तो नही है सुधीर!' अमिताभ ने अपने आसुओ को बरबस रोकते हुए कहा—'बात कुछ नही है! मैं तो इन उठती-गिरती लहरो को देख रहा था। देखते-देखते सोचने लगा कि इन्सान के जीवन की गति भी तो बिल्कुल इन्ही के अनुरूप होती है। क्या हमे भी एक दिन इन्ही की तरह विलीन नही हो जाना है? सोचो तो!'

'मैने तो सब सोच रखा है। अब आप अच्छी तरह सोच लीजिये कि आपके लिए नैनीताल नही बल्कि पागलखाना ठीक है!' यह कह सुधीर कुछ रुका, फिर कहने लगा—'अहमक कही का। कितना ही समझाओ, रहेगा वही मोहर्रमी सूरत लिये हुए! मैं यह सोच रहा था, मै वह सोच रहा था—धत्तेरे की'

'अच्छा भाई। लो, कान पकडता हूँ। अब नही सोचूँगा कुछ!' अमिताभ ने कहा!

'चलो माफ़ किया !' सुधीर ने कहा—'अच्छा. अब सुनाओ, डाकिया के हाल ?'

'डाकिया ठीक है, प्रसन्न है !'

'वह पोस्ट मास्टर कब हो रहा है ?'

'हो जायगा एक दिन—'अमिताभ ने एक दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा और फिर सिर झुका लिया !

'अबे यह बात क्या है ?' सुधीर ने उसे ग़ौर से देखते हुए कहा—'मैं जब-जब उस लड़की की बात करता हूँ या तो आप ठंडी आहें भरेंगे या आप बुत बन जायेंगे। उस लड़की का नाम सुनते ही तुम्हारे गालों में सफेदी क्यों दौड़ जाती है ? क्या झगड़ा हो गया है, या वह तुझे छोड़कर कहीं दूसरे के पहलू में.........'

'सुधीर !' अमिताभ ने उसे डाँटते हुए कहा—'उसके प्रति ऐसी भाषा का प्रयोग करके खुद को भी न गिराओ सुधीर !'

'अबे तो फिर बात क्या है ? सीधी तरह बताता क्यों नहीं ?' सुधीर ने झल्लाते हुए पूछा ।

'कह तो दिया कि वह ठीक है, प्रसन्न है। वह खुश है, स्वस्थ है, और मुझसे क्या चाहता है ?'

आवेश भरे स्वर में अमिताभ बोला। आवेश से उसके होंठ काँपने लगे। उसने एक सिगरेट निकाली और सुलगाकर दूर झील पर के पानी को देखने लगा, जो धुँधलके के कारण अब सुरमई हो चला था। झील के गिर्द अब एक सन्नाटा छा रहा था, जिसे उस पार से उठती हुई डाँडियों की हल्की-हल्की ध्वनि भंग कर रही थी। हवा के सर्द हो जाने के कारण अब लोगों ने यहाँ से जाना आरम्भ कर दिया था ।

कुछ देर खामोश रहने के पश्चात् सुधीर बोला—'तुम्हारे कहने के अनुसार मैं मान लेता हूँ कि वह लड़की स्वस्थ है, पर मैं यकीन दिलाता

हूँ कि तुम्हारा दिमाग़ अस्वस्थ है, रोगी है। तुम्हारा यह अकेले-अकेले सिगरेट सुलगा लेना.........' यह कह, सुधीर जोर-ज़ोर से हँसने लगा।

'ओ--' अपनी भूल पर लज्जित होते हुए अमिताभ ने कहा—

'माफ़ करना भाई, मुझे..... इसका ध्यान न रहा—' और यह कह उसने सुधीर को सिगरेट के स्थान पर माचिस थमा दी।

'यह क्या है ?' सुधीर इस बार गम्भीर हो चला।

'सिगरेट !' अमिताभ ने अंधकार में दूर—बहुत दूर देखते हुए कहा—'तुम्हें सिगरेट चाहिये थी ना ?'

इस पर सुधीर ने उसे झँझोड़ते हुये कहा—'अबे मैं कहता हूँ, यह है क्या ? ज़रा देख तो।' अमिताभ ने उसकी ओर देखा और धरती में समा गया।

इस बार सुधीर हँसा नहीं, खिलखिलाया भी नहीं, उसने उसका मज़ाक भी नहीं उड़ाया। वह उसे लेकर जैसे सोच में डूब गया। वह चुप हो गया था, एकदम चुप।

अमिताभ ने भूल-सुधार के हेतु सुधीर के सामने सिगरेट की डिबिया रखी किन्तु उसे अस्वीकार करते हुए वह उठ खड़ा हुआ। बोला—'चलो अब चलें ? खाने पर भाभी इन्तज़ार कर रही होंगी। और यह कह उसने अमिताभ की कमर में हाथ डाल, उसे खड़ाकर दिया।

रास्ते भर वह दोनों मौन ही रहे ! वह सुधीर भी मौन ही रहा, जिसने जीवन में पल भर भी मौन रहना नहीं सीखा था और यही एक बात रास्ते भर अमिताभ को शूल की तरह चुभती रही। लेकिन चाहकर भी वह उससे कुछ नहीं बोल सका और वे दोनों मौन ही चलते रहे !

९

एक-एक कर दिन गुज़र रहे थे। बहुत ही बोझिल, बहुत ही कष्टप्रद। जब-जब अमिताभ अकेला होता, निराशा आ घेरती। निराशा के उन क्षणों में वह सोचने लगता—यह नैनीताल है, यह स्वर्ग है, यहाँ मैं आया ही क्यों? यहाँ तो अमीरों के चोंचले हैं। रुपये वाले ही तो आते हैं, मौज करना ध्येय बनाकर। बेचारे मज़दूर, जिन्हें पेट भर भोजन भी नहीं मिलता, पिस जाते हैं गर्मी और लू में। कहीं रेल की लाइन सीधी कर रहे हैं, कहीं सड़क कूट रहे हैं तो कहीं नये मकान, पक्के पुख्ता उन्हीं बाहर गये हुए रईसों के लिये बना रहे हैं, ताकि वे शान्ति लेकर ग्रावें तो अपनी वर्षा और शीत इनमें बिता सकें। किसान, जो गन्ने के खेत में सारा पसीना इस दोपहरी की लू में बहाते रहते हैं, वे क्या जानें कि नैनीताल में कितने ताल हैं, मंसूरी और शिमला किस-लिए बने हैं? और······और ये नैनीताल के कुली, होटलवाले, मजदूर और सवारीवाले—भी तो चले आये हैं। पेट खींच लाये हैं इन्हें भी तो। उफ़, पेट, पेट! इन्हें यहाँ के 'सनराइज' और 'सनसैट' से क्या वास्ता? यहाँ की सर्द हवाओं, यहाँ के तारों की आँख-मिचौनी, नीली झीलों की लहरों पर चाँदनी के नृत्य, लोगों के झलमले और पहाड़ियों के सिलसिले से उन्हें क्या वास्ता? काँच के गिलासों में पेश किया गया यहाँ का पानी मँहगा है, फूलों से लदी यहाँ की हवा मँहगी है, यहाँ के नज़ारे मंहगे हैं—ग्रमीर खरीद सकते हैं। ग्रमीर·········! जो नैनीताल की सीरत तक खरीद कर ले जाते हैं। ग्रौर अब मैं यहाँ भटकता हुआ आ पहुँचा हूँ! शान्ति प्राप्त करने! ग्रो···शान्ति!······

अमिताभ के विचारों का क्रम चलता रहता! वह सोचता, जिस घर में वह रह रहा है—वहाँ कितना सुख है, कितनी सुषमा। एक

व्यवस्था है। कायदा है घर में। बच्चों से घर प्रतिपल चहकता रहता है और बड़े जो हैं, वह भी सब अपनी ही धुन में लीन! यहाँ की दीवारें तक हँसती दिखाई देती हैं। घर में इस समय कुल चार प्राणी हैं! एक हँसोड़ और जीवन को सच्चे अर्थ भोगने वाला सुधीर। दूसरी भाभी रेणु, जो अपनी मधुरिम हँसी से सारा घर मुखरित रखती है।

तीसरी भाभी की माँ है—बहुत ही अल्प भाषी और दुनिया के बखेड़ों से अपने को समेटे हुए, जिन्होंने अपने ही में लीन रहना सीख लिया है। लोक को भूलकर पर लोक सुधारने की ही अब इन्हें अधिक चिन्ता है। और एक वह है—सदैव संतप्त, सदैव उद्विग्न रहने वाला, वह! इन प्राणियों के इस स्वर्ग में आया ही क्यों? इनके बीच उसका क्या काम………?

इस विचार पर अमिताभ की वेदना और बढ़ जाती। वह इस वातावरण से स्वयं को समेट लेना चाहता। वह कोशिश भी करता, बहाने भी बनाता, झूठ भी बोलता, कार्य की व्यस्तता की ओट लेता पर उसे छुट्टी नहीं मिल पाती। सुधीर था कि पकड़े बैठा था! भाभी थी कि उसकी बातों को हँसी में उड़ा देती थीं। उसे बताया जाता कि भाभी का छोटा भाई राकेश एक चित्रकार है। इन दिनों अपने पिता और छोटी बहिन श्री के साथ दिल्ली गया हुआ है। बस, अब आजकल लौटने ही वाला है। यह भी बताया जाता कि इन दिनों राकेश के विवाह की बातचीत हरदोई के एक निवासी के मार्फत आगरा में चल रही है। यह भी बताया जाता कि यदि वह कुछ दिन और सब्र से काम ले तो राकेश और श्री से मिलकर उसे हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त होगी। कहा जाता कि उसे वैसी ही प्रसन्नता प्राप्त होगी जैसी एक चित्रकार को दूसरे चित्रकार से मिलने पर हुआ करती है, जैसी कि एक आत्मीय को दूसरे आत्मीय के मिलने पर होती है। कहा जाता कि श्री से

मिलने पर वह संसार को भूल जायेगा····· वह विवश हो, अपने को समेट लेने के विचार को त्याग देता ! सुधीर को रुष्ट करना और भाभी के अनुरोध को टालना उसकी सामर्थ्य के बाहर की चीज़ थी।

इन दोनों प्राणियों के आग्रह से वह सन्तुष्ट था। भाभी के स्नेह के योग्य वह अपने को नहीं पाता था और चाहता था कि वे व्यर्थ उसे लेकर, उसके जीवन को लेकर, अपने को झंझट में न डालें। वह जैसा भी है, ठीक है। जैसा है, वैसा ही रहे। कोई व्यर्थ उसे सुधारने की चेष्टा न करे, क्योंकि वैसा करने में उसे उसका कोई लाभ दृष्टिगोचर तो नहीं होता था, साथ ही सुधारक के मन में उसके प्रति सहायता अथवा स्नेह के स्थान पर एक काई, एक मैल ही पैदा होता था। कोई उसके लाभ की सोचे और उसके प्रतिदान में वह भक्ति और आस्था की, सो सम्भव नहीं था। भक्ति न वह चाहता था, न दे सकता था। इन दिनों उसके पास केवल आँसू थे, और वही वह दे सकता था।

जैसे जैसे दिन बीत रहे थे, अमिताभ को अनुभव हो रहा था, जैसे उसकी निराशा, उसकी अन्यमनस्कता उत्तरोत्तर गहरी होती जा रही है। उसे और अधिक छिपाये रखने की सामर्थ्य वह अपने में नहीं पा रहा था। उसे भय था कि अब उसके हृदय की टीस, उसके हृदय का आंतरिक रहस्य सुधीर और भाभी को पता लग जायगा ! वह नहीं चाहता था कि उन्हें उसकी उलझनों का ज़रा भी संकेत मिले ! कभी-कभी उसे भाभी के मुख से, सुधीर के चेहरे से ऐसा आभास होने लगता—जैसे वे उसकी पीड़ा को ताड़ गये हैं ! पीड़ा का कारण क्या है, स्रोत क्या है, यह भले ही वह न जानते हों पर जैसे, इतना वह अवश्य जान गये हैं कि ज़रूर कोई बात है जिसे छिपाया जा रहा है।

कल रात ही की तो बात थी। भाभी के कमरे से धीमी-धीमी आवाज़ें आ रही थीं—'तुम तो उनके अन्तरंग मित्र हो सुधीर ! तुम तो उनकी इस अस्त-व्यस्तता का कारण अवश्य जानते होंगे ?'

भाभी कह रही थीं !

'यही तो दुःख है भाभी कि वह सब कुछ होते हुए भी, यह एक राज़ मैं नहीं जान पाया हूँ ! मेरे लाख पूछने के बाद भी उसने मुझे कुछ नहीं बताया है !' सुधीर ने कहा !

'बात ज़रूर कुछ है ! मैं भी पिछले दस-पन्द्रह दिनों से देख रही हूँ कि अमिताभ-बाबू नित्य-प्रति घुलते जा रहे हैं। मुझ से उनकी यह व्यथा देखी नहीं जाती !' भाभी बोली !

'मेरी भी कुछ समझ में नहीं आ रहा है भाभी कि यह राज़ अब कैसे मालूम किया जाय ?'

पिछले इतने दिनों से ज़िद कर रहा हूँ कि ज़्यादा नहीं तो एक चित्र तो यहाँ बना ले। बहुत समझाया है मैंने कि फिर ऐसी प्रेरणा, ऐसे नज़ारे अन्यत्र कहीं नहीं मिलने के, पर वह है कि मेरी सुनता तक नहीं ! अब दो चार दिन से जाने की मचा रखी है !'

अप्रतिभ होते हुए भाभी ने पूछा—'क्यों ?'

'मुझे खुद नहीं मालूम ! क्यों यह यकायक मेरे पीछे ही चला आया जबकि मैंने साथ चलने को कहा था और क्यों अब बिना राकेश और श्री आदि से मिले, जाने की उतावली मचाये हुए है जबकि मैं कह रहा हूँ कि महीने भर और ठहर जा, सब ही साथ चलेंगे !'

'यह विवाह क्यों नहीं कर लेते ?'

'विवाह की बात इसने कभी सोची ही नहीं है—'

'क्यों क्या चित्रकार विवाह नहीं करते ?'

'यह बात नहीं भाभी ! बात यह है कि इसने अपने लिए एक लड़की छाँट रक्खी है। बहुत प्रेम करता है उससे और वह लड़की भी इसे कुछ कम नहीं चाहती। लड़की भी काफी सुन्दर, काफ़ी शिक्षित

और कुशल है। बस, उसी से विवाह करेगा। लड़की छाँटली है अतः जल्दी नहीं है!'

'तुमने उस लड़की को देखा है?'

अमिताभ की साँस फूलने लगी। उसकी साँस फूलती ही चली गई!

'हाँ हाँ!' सुधीर बोला—'देखा नहीं? इसके पड़ौस ही में तो रहती है। इस बार आगरा चलोगी तो बताऊँगा तुम्हें भी। देखोगी तो देखती रह जाओगी! ऐसा सौन्दर्य है।'

'सच?'

'हाँ!'

'तो कहीं उसी लड़की को लेकर········मेरा मतलब है कि अमिताभ बाबूजी की इस अस्त-व्यस्तता का कारण········?'

'यही मैं सोचता हूँ!' बीच ही में बात काटते हुए सुधीर बोला—'कि इसकी जो यह दशा है, उसका सम्बन्ध कुछ-न-कुछ उस लड़की से ज़रूर है।'

'पर बात क्या हो सकती है?' भाभी का स्वर व्यग्र था!

'बस, यही तो समझ में नहीं आता!' बुझे हुये स्वर सुधीर ने कहा!

कुछ देर खामोशी!

सहसा भाभी का स्वर आया—'अच्छी बात है, इस राज़ को मैं जानकर रहूँगी। मैं अवश्य पता लगा लूँगी!'

'तुम! कैसे?' सुधीर विस्मित हुआ!

'बस, कह दिया न, मैं पता लगा लूँगी!'

'हो सकता है—' अनिश्चित से स्वर में सुधीर ने कहा। फिर कुछ रुककर कहने लगा—

'शायद तुम्हें कुछ बता दे! वैसे तुम्हें मानता भी बहुत है! कोशिश कर देखो!'

दूसरे दिन आखिर भाभी ने बातों ही बातों में प्रसंग छेड़ ही तो दिया। कहने लगीं—

'तुम बेचैन नज़र आते हो अमिताभ! आख़िर बात क्या है? मुझे बताओ, शायद तुम्हारे कोई काम आ सकूँ!'

'भाभी!' अमिताभ ने अपनी समस्त कृतज्ञता लुटाते हुए कहा—'हाथ जोड़ता हूँ भाभी, मेरी उलझनों में हिस्सा बँटाने की चेष्टा न करो। तुम्हारा अपना जीवन है, उसे देखो मैं तो वैसे ही ...'

इस पर भाभी ने बात जानने का, उसकी उन उलझनों को जानने का काफ़ी अनुरोध किया किन्तु अमिताभ ने उन्हें कुछ नहीं कहा। अमिताभ यही सोचता था कि बताने से क्या कुछ होगा। जो कुछ होना है, वह तो होकर ही रहेगा, फिर उसमें रेणु भाभी अथवा दोस्त सुधीर क्या कर सकता है?

अमिताभ ने उन्हें समझाने की चेष्टा करते हुए केवल इतना ही कहा—'जीवन में कभी-कभी ऐसा अवसर आ जाता है भाभी, जब काल-रथ का अंधा पहिया इन्सान की ओर घूम पड़ता है और तब वह बदनसीब उसके नीचे न आकर धुरे में ऐसी जगह जा बैठता है जहाँ उसकी ज़िन्दगी के कठघरों की कमी नहीं होती। ऐसे अवसर पर किसी अन्य व्यक्ति को सहायता के लिये निमंत्रित करने का अर्थ होता है आग से खेलने के लिये निमंत्रित करना।........आप सन्तोष के लिये अभी केवल इतना ही समझ लें कि मेरी ज़िन्दगी में भी वैसा ही एक अवसर आ गया है। भाग्य में क्या कुछ बदा है, सो आज

उठता है ! विस्मित हास्य और लाज के भार से उसके कपोलों में अनायास ही एक गड्ढा पड़ गया था, जिसका सौन्दर्य देखे ही बन पड़ता था !

कुछ देर के पश्चात् सुधीर बोला—'वैसे यह मुस्कराती पहिले हैं, बात पीछे करती हैं। तभी जिन्दा हैं वरना शरीर से आशा भी क्या हो सकती है ? और इसीलिए 'इण्टर' पास करते ही इन्होंने पहले अपना बीमा करवा लिया है, विवाह नहीं।'

रेणु भाभी जो इस बीच तश्तरी में कुछ मिठाइयाँ और नमकीन ला रही थीं; बात सुनकर ज़ोर से खिलखिला पड़ी ! श्री चुपचाप सिर डाले, प्याले में चम्मच हिलाती बैठी रही।

अब राकेश की बारी आई—

'यह मि० राकेश हैं, जिनकी प्रशंसा तुम काफ़ी सुन ही चुके हो ! संक्षेप में इन्हें भी वही मर्ज़ है जो तुम्हें !'

अमिताभ ने मुस्कराते हुए हाथ जोड़े। देखा, राकेश के मुख पर शान्ति और दृढ़ता की छाप थी। नेत्रों में दूर तक देखने वाली भेदक दृष्टि। व्यक्तित्व के चारों ओर प्राणमयी विद्युत्धारा। व्यवहार में में सरलता और गति !

अपनी बारी आई जान, अब अमिताभ संयत दिखाई देने का उपक्रम-सा करने लगा। सुधीर ने अमिताभ पर एक गहरी दृष्टि डाली और चाय का घूँट लेते हुए बोला—'यह मेरा दोस्त है अमिताभ ! एक ऊँचे पैमाने का चित्रकार और 'फिलासफ़र'। जीवन का इसका अपना पथ है। ज़रा भी तो न्याय-प्रिय आदमी नहीं—बिलकुल पागल ही है। आगरा में रहता है ना—'

मेज़ के सामने से हँसी बिखर पड़ी। श्री ने तो अपना मुँह आँचल में छिपा लिया। भूमिका समाप्त हुई। अब सम्बन्ध सीधे थे। बातचीत फैली। मर्यादाओं की बातचीत, व्यवस्था की, समाज की, श्रेणियों

की बातचीत। समाज में सिर होते हैं, ऊँचाई आदमी की आमदनी के बराबर होती है अथवा खर्च के·········और घूमते-घूमते बातचीत चित्रकला पर आकर स्थिर हो गई।

राकेश ने प्याले को धकेलते हुए और सिगरेट के पैकेट को अमिताभ के सम्मुख करते हुये पूछा—'अमिताभ जी, आप के निकट चित्रों में रंगों का कितना क्या महत्त्व है ?'

सिगरेट को उँगली में घुमाते हुए अमिताभ ने कहा—'बहुत कुछ। रंग ही तो चित्र का गुण है।'

'इस कला की प्रेरणा आपको कैसे मिली थी ?'

अमिताभ मुस्कराया—'कला तो मनुष्य के अत्यन्त निकट होती है, भाई राकेश। मनुष्य की सौन्दर्य-भावना कला के रूप में उसे चारों ओर से घेर लेना चाहती है। वह अर्थ साध्य नहीं—।'

राकेश कुछ देर मौन रहा ! सिगरेट को झाड़ते हुए फिर बोला—'आपकी श्रद्धा किन चित्रकारों में रही है और क्यों ?'

राकेश मानो प्रश्न बन गया। अमिताभ ने एक लम्बाकश खींचते हुए कहा—'मैं सबसे अधिक श्रद्धा कलागुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, यामिनीराय और नन्दलाल बसु की कृतियों में रखता हूँ। कारण आसान है। जो लोग कला में देश या जाति की छाप नहीं मानते और कला को सार्वभौम कहकर राष्ट्रीय कला का उपहास करते हैं, वे मेरी दृष्टि में भ्रान्ति में हैं। कला के रूप देश, प्रान्त और साधक की दृष्टि में पृथक् और भिन्न होते हैं। देशानुसार उनका विकास और रूप-विधान देखा जाना चाहिये।'

राकेश ने मुस्कराते हुए विरोध किया—'किन्तु क्या कला के मूर्त रूपों में और उनके पीछे जो रस है, वह एक नहीं ? क्या उस रस की अनुभूति देश-भेद से भिन्न है ?'

पल भर को अमिताभ जैसे सोच में पड़ गया हो ! दो चार कश लिये और फिर भारी आवाज़ में बोला—'रस तो विश्व में एक ही है और तभी तो यह अनुभूति कला के मूर्त रूपों में उतरती है, किन्तु……… ……' कहते-कहते अमिताभ रुक गया और उसकी दृष्टि सहसा ही श्री पर जा पड़ी । वह एकाग्र और एकस्थ बनी अमिताभ को देखती हुई मानो पकड़ ली गई हो ! हड़बड़ा-सी उठी ! अमिताभ की दृष्टि फिसलती हुई पुनः राकेश पर केन्द्रित हो हो गई ! अधूरी बात को उसने पूरी करना चाहा ही था कि सुधीर एक जंभाई के साथ उठते हुये बोला—'दो पागलों के बीच अब हमारा जीना बड़ा मुश्किल है—'

सबके सब थोड़ी देर हँसते हुये सुधीर की ओर देखने लगे ! राकेश ने, फबती कसी—'ठीक ही है । एक किसान का विद्वानों की सभा में क्या स्थान ?'—

जब सुधीर चला गया तो अमिताभ ने अधूरी बात को पूरी करते हुये कहा—'हाँ तो मैं कह रहा था कि राकेश भाई, क्या तुम नहीं मानते कि लगभग पचास वर्ष पूर्व हमारे देश में जिन आत्माओं ने संस्कृति का यह महत्त्वपूर्ण यज्ञ आरम्भ किया था, उन्हीं के प्रभाव की धाराओं से आज सारा सिंचित हुआ है और जो सौन्दर्य यहाँ देखने को मिलता है, वह कहीं अन्यत्र उपलब्ध है ?'

राकेश मानो अमिताभ की इस बात से स्वस्थ नहीं हुआ, प्रसन्न भी नहीं । बोला—'विदेशों में चित्रकर्त्ताओं के चित्रों और कलाकृतियों को लोकाराधन के लिये सर्वसुलभ बना दिया गया है और वहाँ जो विज्ञान की सहायता प्राप्त है, क्या सराहनीय नहीं ? क्या वहाँ कला श्रेष्ठ कृति को स्वरूप के साथ जो सम्पादित और प्रकाशित करता है तो उसे उचित गर्व का अनुभव नहीं होता और वह गर्व क्या सभ्य जगत् के संस्कारी मन का सुन्दर भाग्धेय नहीं है ?'

'है—है क्यों नहीं—' बात को खींचते हुए अमिताभ बोला—'किन्तु हमारे देश ने कला की इस धारा को दबाया। और वह ठीक भी है!' कहते-कहते अमिताभ के होंठ आवेश से कुछ-कुछ काँपने लगे—'म्यूज़ियम, आर्ट, गैलरी की बात हमने अंग्रेज़ों से सीख ली है। इस देश में कलाकार का सर्वभौम मन्दिर में रहता था। धार्मिक चित्र एक मात्र सत्य है! आर्ट स्कूलों में धन्धा कला से परे हटाने के लिये, कला से मन फेरने के लिये चलता है—'

'हो सकता है, आपके विचार सही हों पर मुझे तो इस युग के सस्ते, बौद्धिक साँचों में ढले हुए विचारों के प्रति अनास्था ही रही है!' राकेश ने सीधा प्रहार किया!

श्री ने एक दृष्टि अमिताभ पर डाली। अमिताभ का मुँह तमतमा रहा था। उसकी आँखों के कोनों में वेदना करवटें ले रही थी। सफेद खादी के कुर्ते के कोनों में वेदना करवटें ले रही थी। सफेद खादी के कुर्ते और धोती में लिपटे विशाल कन्धों और कन्धों से ऊपर मानव का जैसा कोई विशाल सिर हो और सिर में……! दूसरी दृष्टि उसने राकेश पर डाली। नीली कमीज़, कमीज़ में सोने के बटन, सफेद पैण्ट, क्रेप के महँगे जूते। जैसे विदेशी बू आ रही हो। श्री का अन्तर न जाने क्यों अपने भाई के प्रति क्षोभ और ग्लानि से भर उठा।

अमिताभ प्रहार को संभालने के पश्चात् कुछ प्रकृतिस्थ-सा होते हुए बोला—'भाई राकेश, इन्हीं बौद्धिक साँचों में ढले हुये विचारों ने देश को न केवल कला की ही आँख दी है बल्कि विदेशी साँस्कृतिक आक्रमणों से ग्रस्त-व्यस्त देश की कला—आत्मा को पहचानने की दृष्टि और पूजने-सजाने की प्ररेणा भी दी है। क्या आपकी विदेशी दृष्टि भारतीय साहित्य और संस्कृति के उन गह्वरों तक पैठ सकती है, जहाँ कला परम्परा का नवीन रूपान्तर, कला-आत्मा का नवीन जागरण और उसकी सूक्ष्मताओं का नव-निर्माण और भाव-गम्भीरता का अभिनव सौन्दर्य

बिखरा पड़ा रहता है ? या आपकी विदेशी दृष्टि केवल स्थूल और 'फोटो ग्राफिक' रूप का चित्रण ही देख पाती है—और वह भी विज्ञान पर ही अवलम्बित होकर ?' अन्तिम वाक्य को कुछ लम्बा खींचते हुए अमिताभ उत्तर की प्रतीक्षा में राकेश की ओर देखने लगा !

राकेश क्रोध से तमतमाने-सा लगा। वह कुछ कहे, इससे पूर्व श्री ने, अमिताभ पर गर्व की दृष्टि फैंकते हुए, बहुत ही स्नेहपूर्ण और मृदुल स्वर में कहा—'अमिताभ जी, इस प्रसंग को छोड़ दें तो अच्छा हो !'

अमिताभ के लिये मानो यह कोई कठोर आज्ञा रही हो। अपने को सम्भालते हुए बोला—क्षमा कीजिये, आप हमें ठीक समझ नहीं पाईं। राकेश भाई को भी नहीं !' और यह कह, मुस्करा दिया !

थोड़ी देर इधर-उधर की बात हुई और फिर सब उठकर अपने-अपने कमरे की ओर चल दिये !

साँझ ढल रही थी ! पक्षी सुदूर नीले आकाश के वक्ष पर फैल अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। क्षितिज की ओर, पहाड़ियों की चोटियों पर सुनहरी किरणें अपना रंग घोलने का उपक्रम कर रही थीं। किन्तु अमिताभ कमरे के एक कोने में अकेला बैठा अपने ही में लीन था। उसके भीतर जैसे कुछ उठ और गिर रहा हो। एक नीरवता थी, उद्विग्नता थी, जिसे वह जितना ही सहलाने की चेष्टा कर रहा था, उतनी ही उसकी विकलता बढ़ती जा रही थी। मानो भीतर से धुँआँ घुमड़-घुमड़ कर उठ रहा हो ! सामने गोल मेज पर चाय का खाली प्याला पड़ा हुआ था और हाथ में सुलगती हुई सिगरेट जाने कब से जल-जल कर आधी रह गई थी। छत की ओर दृष्टि किये, वह कुर्सी पर निढाल-सा पड़ा न जाने किस गुत्थी को सुलझाने की निष्फल चेष्टा कर रहा था ! एक विराट् शून्य, एक विचित्र रीतापन, अकथनीय व्यथा और एकाकी अमिताभ !

कुछ देर पश्चात् वह अधीर मन से कुर्सी पर से उठ गया और

अस्थिर भाव से कमरे में टहलने लगा। विचारों ने अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। थक कर वह पुनः कुर्सी पर निढाल-सा गिर गया !...... यह श्री—कितनी हँसमुख है, लहरों-सी चेतना-वेदना विहीन। कितनी पूर्ण है यह श्री ! 'सन्धि' हो मानो—'सन्धि !' और वह नीरजा...... जिसका हँस पड़ना मानो रोने का ही कोई दूसरा रूप हो ! एक दम अपूर्ण-सी जाने किस रूप में संसार को देखती है, अपने को देखती है, औरों को देखती है ! वह 'सन्धि' कहाँ, कब बन सकी है ? वह तो 'इकाई' है—'इकाई !' त्रास देती है, त्रास पाती है। जब जीवन का कठोर व्यंग आँसुओं की चरम सीमा को छूने का प्रयास करता है तो वह आँसुओं के भीतर से भी हँस पड़ती है। जैसे व्यथा को झेलता हुआ अंगारा दमकता ही रहता हो।......

सहसा द्वार पर खटका-सा हुआ। अमिताभ के विचार सहसा रुक गये। जैसे ही उसने मुड़कर द्वार की ओर देखा, श्री सहमी-सी सिकुड़ी-सी भीतर चली आई। अमिताभ पल भर को भौचक्का-सा श्री को देखता रह गया और फिर हड़बड़ा कर उठते हुए बोला—'आप ?'

'जी—'

दोनों कुछ देर मूक खड़े रहे। अन्त में अमिताभ ने ही बात का सहारा लिया—'आप खड़ी क्यों हैं, बैठिये ना—'

श्री को मानो किनारा मिल गया हो। कुर्सी पर बैठते हुए बोली—'आप कुछ सोच रहे थे। मैंने व्यर्थ ही विघ्न पैदा कर दिया। क्षमा चाहती हूँ !'

अमिताभ खोखली हँसी हँस दिया।

श्री भीतर-ही-भीतर सिहर उठी। पल भर मौन, मूक भाव से अमिताभ को निहारती रही और फिर शून्य से बचने के लिए बोली—

'इस अँधेरे में, भला आपको कैसे क्या सुहा रहा होगा ? क्या आपका जी घबराता नहीं ?'

अमिताभ ने दूसरी सिगरेट सुलगाई। कुछ देर उसके धुँआँ में डूबा रहा, फिर स्मित हास्य में बोला—'अँधेरा ! अंधकार !! इस जीवन का अन्तिम पड़ाव भी तो अँधेरा ही है श्री महोदया। दीप-शिखा की भाँति, अन्त में एक बार—अधिक ज्योतित होकर, तिरोहित हो जाना……'

श्री एक बारगी हिल उठी। उफ़, कितना विराग है !

अमिताभ कुछ देर सिगरेट को होठों में दाबे, बेचैनी से हाथों की उँगलियाँ मसलता रहा ! श्री ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा—'लगता है, जैसे आप बहुत ही निराशावादी हो चले हैं, जैसे कोई विचित्र व्यथा है जो आपको भीतर-ही-भीतर क्षत-विक्षत किये दे रही है—जैसे, कुछ उलझनें हैं, गिठानें हैं, जो आपके जीवन को राहू की भांति—' संयत रखने की लाख चेष्टा के उपरान्त भी श्री का स्वर कँपकँपा गया।

'हूँ—' अमिताभ जैसे स्वल्प-चेतन में कह गया हो, हतचेत-सा श्री को तकता रहा और अन्त में बोला—'हाँ, आज सुधीर कहाँ चल दिया ? काफ़ी देर से नज़र नहीं आ रहा ?'

श्री को मानो तृप्ति की एक घूँट मिली ! उत्साह के साथ बोली—'वह और भैया तो गले में कैमरा लटकाये दोपहर से ही ऐसे ग़ायब हैं कि अब तक लौटने का नाम नहीं !'

'ओ—'

श्री कुछ देर मौन रही। फिर साहस करके बोली—'आइये, थोड़ा घूम ही आएँ। जी बहलेगा ! अमिताभ ने देखा कि श्री जैसे इसी उद्देश्य से आई थी। बीच में जैसे भूमिका थी और कुछ नहीं। उसने उसे निरुत्साहित करना भी नहीं चाहा। कुछ देर बाद उसके साथ हो लिया !

चारों ओर लट्टू दमक रहे थे ! वायु में सीलन की मात्रा घनी हो चली थी। सड़कों पर काफ़ी चहल-पहल थी। आमोद-प्रमोद के उद्देश्य से आया हुग्रा जन-समुदाय इठलाता हुआ इधर-उधर दिखाई देता था। सड़कों की चटख, ढलानों का सौन्दर्य, ऊँचाइयों का गर्व और झीलों से उठता हुआ झींगुरों और डोडों का शोर मानों सब मिलकर हृदय पर एक विचित्र वार-सा कर रहे थे !

काफ़ी देर के बाद श्री ने ढूँढ़-ढाँढ़ कर बात निकाली—'आप मिशन स्कूल में टीचर हैं ?'

'हाँ। हूँ तो !' ग्रमिताभ ने मुस्कराते हुए किन्तु बुझे से स्वर में कहा !

श्री जैसे मुरझा गई !

कुछ देर के मौन के पश्चात् अमिताभ अपने आप ही बोला—'कई बार विचार आता है कि क्लास में पढ़ा देता हूँ तो कौन बड़ा काम करता हूँ ? यह झकझक क्यों ? पर यह विचार कभी-कभी ही आता है और तब मैं सिद्धान्त का आश्रय लेता हूँ। संसार से भागना कायरता है। कभी-कभी लगता है कि मैं अपने में-से कुछ दे डालूँ पर समझ में नहीं आता कि क्या है जो मुझे तज जाने के लिये लालायित कर उठता है ! जीवन में कितनी ही अस्पष्ट भावनायें हैं पर उनकी छाया से अपने मार्ग को क्या धुँधला हो जाने देना चाहिये ?' कहते-कहते अमिताभ रुका। एक गहरी लम्बी साँस लेते हुए बोला—' सब एक जंजाल जान पड़ता है। कुछ समझ में नहीं आता !'

श्री एकनिष्ठ भाव से, विचारों के बोझ से दबी, मानो एक-एक शब्द को गाँठ दे रही थी ! इतना तो वह समझ ही गई कि कोई व्यथा है, जो रह-रह कर अमिताभ के होठों पर आकर टकराती है किन्तु बाहर नहीं फूट पाती। व्यथा और टीस की लौ पल भर को जैसे प्रज्वलित होकर फिर राख बन जाती है। श्री के भीतर जो नारी छिपी बैठी थी,

उसमे अनायास ही अमिताभ के प्रति सहानुभूति जन्म ले रही थी। उस सहानुभूति के अकुर का कारण वास्तव मे क्या हो सकता था—उसका ओर छोर कही कुछ दिखाई नहीं देता था। विश्लेषण ही यही किया जाय तो कदाचित् कारण अमिताभ का अपना व्यक्तित्व, उसके गहरे और ठोस विचार, उसकी मूक-वेदनाग्रस्त भाव-भगिमा अथवा उसका एक ऊँची श्रेणी का कलाकार होना रहा हो। किन्तु श्री न चाहते हुए भी न जाने क्यो अमिताभ के प्रति अपने हृदय मे स्नेह का हल्का-सा अकुर फूटते हुए अनुभव कर ही थी। अपनी इस विचित्र-सी अनुभूति पर, इस सन्नाटे पर, इस दबाव और आकर्षण पर और कभी-कभी तो केवल इस विचार पर, कि वह अमिताभ को देखने के लिये विचित्र दृष्टि से काम ले रही है—एक बारगी सिहर उठती थी। अपनी अकुलाहट को उसे बडे यत्न के साथ समेटना पड रहा था ताकि अमिताभ की भेदक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि कही इन बातो को ताड न जाए और उसकी दुर्बलता कही हँसी का विषय न बन जाए।

श्री ने अमिताभ का सामीप्य भी न पाया था। वह अमिताभ के साथ आज ही जीवन मे प्रथम बार परिवार के बीच चाय पर बैठी थी। वहाँ की वार्ता के पश्चात् न जाने कैसे विचार लेकर वह अपने कमरे में भी उसे विचित्र-सा कुछ अनुभव हो रहा था। वह स्वय नही समझ सकी थी कि वह अस्थिरता उसे किसने दे डाली थी ? दोपहर के खाने के समय भी कोई विशेष घटना नही घटी थी। अधिकतर समय श्री ने अपने आपको अमिताभ से तटस्थ-सा बनाये रखने की कोशिश की थी। खाने के पश्चात् दीदी से ही तो उसे अमिताभ के सम्बन्ध मे थोडी सी जानकारी प्राप्त हुई थी और वह भी जैसे अनायास ही। किन्तु जो कुछ उसने दीदी से सुना, वह क्या उसके लिये कम सुखदायक रहा था ? क्या इस जानकारी पर उसका हृदय वास्तव मे आन्दोलित नही हो उठा था ? जिस प्राणी से उसने अपने को तटस्थ बनाये रखने का

अभिनय किया था, उसी प्राणी के कितने निकट वह इस समय झील की ओर चली जा रही थी ! यह विचार आते ही वह एक बारगी सिहर उठी !

दोनों मौन, मूक चले जा रहे थे कि सहसा विकृत से स्वर में निकले इन शब्दों से वे चौंक से उठे—'एक पैसा बाबू । कल से भूखा हूँ !'

अमिताभ के पैर रुक गये । श्री भी कुछ दूरी पर खड़ी रह गई । एक विगलित मानव-कंकाल, कान्तिहीन । मुख पर करुणा की छाप । कृश, म्लान शरीर पर जीर्ण-शीर्ण वस्त्र और कान्तिहीन नेत्रों में अपार आशाएँ मानो हिलोरें ले रही हों !

आवाज़ पुनः प्रतिध्वनित हुई—'एक पैसा माई-बाप । ईश्वर आपकी जोड़ी बनाये रक्खे ! आपकी हज़ार बरस की उमर हो !'

जोड़ी······? दोनों एक बारगी चिहुँक-से उठे ! श्री ने सम्यक् उस कंकाल की ओर से मुँह फेर लिया ।

अमिताभ ने पहले श्री की ओर देखा चुपचाप और फिर चुपचाप जेब से एक चवन्नी निकाल कर वृद्ध की फैली हुई हथेली पर रख दी और आगे बढ़ गया । वृद्ध का कण्ठ भर आया था । उत्तर में केवल नतमस्तक होने के अतिरिक्त वह केवल हर्षातिरेक में इतना ही बोल पाया—'ईश्वर आपकी जोड़ी सलामत रखे !'

उफ़ ! फिर वही बात । हृदय में ज्वार उत्पन्न कर देने वाली बात ! कुछ देर दोनों पूर्ववत् मौन बने साथ-साथ चलते रहे । कुछ देर बाद आँखों के कोनों से अमिताभ ने जैसे श्री को देख ही तो लिया । लट्टू के हल्के प्रकाश में भी तो श्री के मुख की विवर्णता छिप न सकी । अमिताभ पल भर अपने में न जाने कैसे विचारों को समेटे मौन बना रहा, फिर प्रकट में बोला—'मैं जब-जब इन बेचारे भिखमंगों को देखता हूँ तो न जाने अनायास मैं क्यों एक विचित्र से अवसाद से घिरा सोचने

लगता हूँ कि यह भिखमगे जिनसे प्राय अधिकतर लोग दुराव और तटस्थता का व्यवहार करते है, मेरे अपने कितने निकट है—कितने निकट, मानो अपने कोई अन्तरग ही हो, आत्मीय ही हो ।'

'अच्छा ?' श्री हौले से मुस्कराई—'अन्तरग और आत्मीय ? कैसे ?'

'यो कि जब तक हम इस ससार मे हैं तब तक ससार के प्राणी मात्र स हमारा निकटतम सम्बन्ध है । यहाँ तक कि मिट्टी का छोटे से छोटा कण भी मेरे जीवन और शरीर से सम्बन्धित है और जिस दिन मैं ऐसा अनुभव करूँगा कि वह सम्बन्ध टूट गया है, उस दिन—' अमिताभ बात पूरी नही कर सका और एक अकुलाया हुआ सा उच्छ्वास उसके होठो पर से गुज़र गया ।

श्री ने सक्षिप्त-सी दृष्टि अमिताभ पर डाली और फिर जैसे जो कुछ अपूर्ण रह गया था, उसकी पूर्णता के अनुसन्धान मे लग गई ।

झील आ गई थी । किनारे पर अधेरा गाढा हो चला था । दूर-दूर कही आदमी बैठे दिखाई रहे थे और वे भी मानो एक-एक कर, जाने की तैय्यारी मे हो । पानी की सतह पर एकाध नाव हिलती-डुलती नजर आ रही थी । श्री और अमिताभ पानी की सतह पर दृष्टि फैलाये कुछ देर खडे रहे, मानो उस सौन्दय को अपनी दृष्टि मे भर लेने की कोशिश कर रहे हो, फिर थके-से, बोझिल मे, वही बैठ गये ।

'आपको हमारा नैनीताल पसन्द आया ?' श्री ने प्रश्न किया फिर कुछ सभलते हुए बोली—मेरा मतलब है यहाँ का सौन्दर्य ।'

अमिताभ ने बोझिल-सी मुस्कान लुटाते हुए कहा—'मैं जब किसी सुन्दर वस्तु को देखता हूँ तो न जाने क्यो उसकी अस्थिरता पर पहले विचार करने लगता हूँ ।' यह कह, वह कुछ रुका और फिर न जाने क्या सोचकर बोला—'वैसे यहाँ का सौन्दर्य कम नही है ।'

श्री ने मानो संतोष की साँस ली। उत्सुक हो, बोली—'तो कुछ दिन यहीं ठहरिये ना? अभी तो आपके स्कूल भी बन्द हैं—' फिर बात को अधिक साफ़ करते हुए बोली—'मेरा मतलब है, अभी तो आप ठहरेंगे ना?'

इस 'मतलब' पर अमिताभ को हँसी आये बिना न रही। बोला—'जब तक संस्कार हैं तब तक तो अवश्य ही आप लोगों पर बोझ बना रहूँगा। आगे देखिये।'

श्री जल्दी से बोली—'ऐसी बात नहीं है अमिताभजी। यह तो हमारा सौभाग्य है जो आपके सम्पर्क में हम लोग आ सके।'

इस स्नेह और अनुरोध के प्रति अमिताभ के हृदय में कितने ही विचार आये और चले गये। काश, यह अबोध श्री उसके दीर्घ इतिहास का कोई भी अंश जानती हुई होती। उसके दुर्भाग्य और उसकी व्यथाओं की सीमाओं का अनुमान भर कर सकती! पर क्यों? श्री यह सब क्यों करे? उसका अपना जीवन है। वह अपने जीवन में व्यर्थ ही इस दो दिन के अतिथि के प्रति यह बोझिलपन क्यों ग्रहण करे? इस अतिथि की अपनी जो समस्यायें हैं, उनसे श्री को क्या मोह, क्या सम्बन्ध? यह उसका कौन? जीवन में ऐसे कितने ही प्राणियों के साथ नित्य प्रति ही तो सम्पर्क होता है पर वह सब कितने समय का?

'आप देखिये, फिर कुछ सोचने लग गये!' श्री ने अमिताभ की विचार शृंखला को तोड़ दिया।

'ओ—हाँ!' अमिताभ सजग होते हुए बोला!

'क्या सोचने लग गये थे?'

'कुछ नहीं!' अमिताभ के होठों पर मुस्कराहट फैल गई!

'कुछ तो सोच ही रहे थे—' श्री मृदु स्वर में बोली!

सोच रहा था कि आज से कितने दिनों पूर्व मुझे अपनी दीदी का

पत्र मिला था जिसमें मुझे लिखा था कि पिताजी बीमार हैं और मैं जल्द चला आऊँ। मैं वहाँ नहीं जाकर यहाँ चला आया। आज विचार आता है कि पिताजी न जाने कैसे होंगे? मेरे प्रति क्या सोचते होंगे वे लोग? मैं यहाँ क्यों चला आया? कितना बुरा हूँ मैं!' अमिताभ के स्वर में व्यथा बज उठी!

'तो फिर आप ऐसी दशा में यहाँ क्यों चले आये?'

'यों ही बस, ऐसे ही चला आया!' अमिताभ ने अपनी घबराहट छिपाते हुए कहा—'क्योंकि आगरा में मेरा जी अचानक घबराने लगा था। जीवन में जड़ता-सी भरने लगी थी और एक ही क्रम था। फिर सुधीर का भी काफी दबाव था। अब सोचता हूँ, जो कुछ मैंने किया है, ठीक नहीं किया। पर क्या करूँ?'......

श्री ने अनुभव किया कि अमिताभ को कोई वेदना भीतर-ही-भीतर खा रही है और जिसके कष्ट से कभी-कभी वह कराहने की चेष्टा करने लगता है किन्तु पुनः अपने संयम द्वारा, अपनी शक्ति द्वारा, उस कराह को अपने ही में समेट लेता है।

प्रतिपल ऐसा होता था। और तब-तब ही श्री की जिज्ञासा, उसका कौतुहल बढ़ जाता था।

'तो यहाँ से जाते समय आप अपने पिताजी के पास ही जाएँगे ना?'

'हाँ सोचता तो यही हूँ!'

'पर जाने से पूर्व अच्छा होता यदि आप यहाँ का कोई 'स्केच' तो तैयार कर लेते!'

'स्केच' का नाम सुनते ही अमिताभ की आत्मा चिहुँक उठी। मानो किसी ने उसके सोये हुए स्वप्न जगा दिये हों, उसके रुके हुए आँसुओं को धक्का मार दिया हो। अपने को सँभालते हुये बोला—'स्केच' का

'मूड' ही नहीं आ रहा ! क्या बताऊँ ?' कुछ क्षण बाद बोला—'लगता है जैसे मेरे भीतर का कलाकार मर गया है और मेरी तूलिका—मेरे रंगों के शव बिखरे पड़े हैं !'

श्री भौचक्की-सी रह गई। पल भर मौन रही फिर विगलित-से कण्ठ-स्वर में बोली—'आपके शब्द सच, बड़े भयानक हैं। उनसे मुझे दुःख हुआ है। ये शब्द मेरे अपने विचार से, साधक के नहीं होते, कलाकार के नहीं होते क्योंकि कलाकार तपस्वी होता है। वह अपना सब कुछ उस तपश्चर्या में भुला देता है। वह कहाँ है, उसकी गति क्या है—यह सब बातें उसके निकट आ नहीं पातीं। भला, साधक अपनी साधना से, अपने सत्य के अन्वेक्षण से—जो स्वान्तः सुखाय नशा है, अपने को पृथक् रख सका है ?' श्री जैसे आवेश में बह गई थी !

अमिताभ के सामने से मानो कोई पर्दा उठ गया हो। वह क्षण भर पास बैठी श्री को भौचक्का-सा देखता रह गया—जैसे उसके भीतर की छिपी नारी, उस नारी के इस आन्तरिक सौन्दर्य ने उसे पहली बार चकित कर डाला हो ! श्री के स्थान पर नीरजा उपस्थित हो गई हो और मानो उसी के मुख से वही चिर-परिचित, युगों से सुनते चले आये शब्द निकले हों ! उसके कानों के पर्दे झनझना उठे। उसकी सोई हुई आत्मा इन भारी भरकम और आदर्श से पूर्ण शब्दों से क्षण भर को आलोकित-सी हो, जाग उठी किन्तु दूसरे ही क्षण वह बौखला उठा—'इन शब्दों से सच श्री, मुझे तृप्ति बिल्कुल नहीं मिलती—नहीं मिलती !' और यह कह, अमिताभ ने अपना मुँह अपने हाथों में छिपा लिया !

श्री पल भर को आवाक् रह गई। उसके होठ यों खुले रह गये—जैसे गुलाब की अधखिली कली, जिसे रात की ओस और प्रभात के झोंकों ने कच्ची नींद से जगा दिया हो !

११

आकाश की झोली में दो-चार तारे आ गिरे थे। खिड़की से बाहर आ गिरे थे। खिड़की से बाहर विस्तृत नीला आकाश और उस आकाश की झोली में पड़े वे दो चार तारे यों-के-यों दिखाई दे रहे थे और अमितामभ अनिमेष उस नीले आकाश पर, उस नीले आकाश के पार तक आँखें गड़ाये कुछ देख रहा था। क्या देख रहा था? विस्तार को, तारों की हल्की टिमटिमाती रोशनी को अथवा केवल शून्य को!

कुछ देर उसी प्रकार देखने के उपरान्त वह बिस्तर पर कुसमुसाने लगा। आधे घण्टे पूर्व सुधीर, राकेश, श्री और रेणु भाभी उसके पास काफी बैठे रहने के बाद अपने कमरों में जा चुके थे। वह रह गया था, केवल वह। मानो कुसमुसाने के लिये, अपने में ही घुलते रहने के लिये! केवल वह!

वह घुलने लगा। अनुभूति उसके आस-पास घनी हो चली। सुदूर देश की नीरजा उसके मानस-पट पर सजीव हो, मूर्तरूप में उभर आई। पूर्ण रूप में—! कपोलों पर एक विचित्र लावण्य, एक आलौकिक माधुर्य मानो पके हुए सेव पर, जिसे मनुष्य के हाथों ने नहीं छुआ हो। होठों पर विचित्र प्रकार का विद्रोह। मखमली ठोड़ी। गर्दन पर हंस के परों जैसी सफ़ेदी और वैसा ही लोच। गले के नीचे—एक ऐसा हृदय, जिसमें मीठी-मीठी अभिलाषायें और साथ ही एक भयंकर तूफान जिसकी न इति का पता था और न अन्त का। उस तूफान में कितनी क्षमता थी कि पड़ौसवाला भी पत्ते की भाँति उसमें उड़ जाए। उसके विचार कितने गहरे—जिनका आवर्त्त—सत्य का अन्वेषण, महानता, कला साधना, तपस्या—जिन पर नीरजा स्वयं अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को अधीर और लालायित!……अमिताभ मन-ही-मन कराह उठा। करवट ले ली। विचारों ने भी उसके साथ करवट बदली!……यह श्री…

साँवला-रंग, जैसे धूमिल संध्या। अधिकतर विहँसती-सी, जैसे टहनी से लिपटा निर्दोष फूल। दूसरे के दुःख को देख कर स्वयं कातर हो उठने वाली—पूरी ? अन्नपूर्णा हो जैसे। एक दो बार के सम्पर्क में ही दूसरे को अपने आकर्षण के दायरे में खींच लेने की अपार क्षमता से पूर्ण—श्री !······और उसके बहते हुए विचार आज की संध्या वाली घटना पर जाकर स्थिर हो गये। वही कला, साधना, तपस्या, सत्य ! अमिताभ के हृदय में एक अंधड़-सा उठा और छितराता-सा रहा। मानो टिकने मात्र को भी कहीं कोई कूल-किनारा न हो। उसके अन्तस में बस, यही एक विचार उठता-भरता रहा कि एकदम, एक ही झटके में, इस निकम्मे खोल को तोड़कर वह बाहर निकल आए—यहाँ तक कि उसके जीवन के दोनों भाग एक दूसरे से मिल जाएँ और एक ही धुरे के चारों ओर घूमने लगें।

इसी प्रकार छटपटाते हुए पता नहीं उसे कब नींद आ गई !······

दूसरे दिन सब लोग खाना खाकर निबटे ही थे कि अचानक सारे घर में खुशी की एक लहर-सी फैल गई ! हाथ में एक लिफ़ाफा और एक पैकेट-सा कुछ लिये श्री तो सारे आँगन में फिरकनी-सी नाचने लगी। और थोड़ी देर में वह खुशी की लहर घर के प्रत्येक प्राणी के मुँह पर प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी। अमिताभ और सुधीर इस अकारण खुशी का तारतम्य नहीं पा रहे थे। आखिर इस श्री को कौनसा ख़जाना हाथ लग गया है !

जब सुधीर से नहीं रहा गया तो उसने श्री को पकड़ा—'क्यों शोर मचा रही हो जी ? पागल हो गई हो क्या ?'

'हाँ, बिल्कुल पागल—' नाचती-थिरकती-सी श्री बोली !

इतने में राकेश आ गया और लिफ़ाफे व पैकेट को श्री से छीनने की कोशिश करता हुआ बोला—'देख श्री, चुपचाप दे दे वरना सच, पिट जाएगी !'

श्री भला, उस सामग्री को यों आसानों से दे देने वाली थोड़े ही थी। अँगूठा बताकर दूर खिलखिलाती हुई भाग गई। राकेश भुनकर रह गया !

रेणु भाभी ने कहा—'हाँ, श्री ! यों कभी मत देना। राकेश से पहले मिठाई की दावत स्वीकार करा लेना वरना पछतायगी !'

'क्यों तंग कर रही है लड़की ? बहुत हो चुका।' श्री की माताजी ने सानुनासिक स्वर में राकेश का पक्ष लेते हुए, श्री से मीठी झिड़की में कहा !

'ओ, तो—मामला मिठाई का है। तभी श्री इतना छका रही है।' सुधीर ने मुस्कराते हुए कहा—फिर राकेश से बोला—'यार, चुपचाप दावत मंजूर क्यों नहीं कर लेते ?'

'अच्छा बाबा ! दावत मंजूर !' हाथ जोड़ते हुए, खिसियाने से स्वर में राकेश बोला ! 'देखो, मंजूर है ना ?' श्री ने राकेश को जैसे फिर चिढ़ाया !

'ठहर तू !' राकेश ने झपटते हुए कहा और फिर श्री से वह लिफ़ाफा और पैकेट छीन कर अपने कमरे की ओर भाग छूटा।

सुधीर ने पास जाकर पूछा—'क्या बात है श्री ?

अब तक अमिताभ भी बाहर निकल आया था और खड़ा-खड़ा भाई-बहिन के इस तमाशे पर हँस रहा था !

श्री सुधीर के पास आई और सुधीर को ज़रा और पास आने को कहा। फिर उसके कान में कुछ कहती रही और फिर स्वतः ही खुशी में उछलने लगी।

'ओ—यह बात है ! तब तो दावत पक्की ! पर वह चित्र ज़रा हम भी तो देखें !'

'ठहरो जी। चित्र के स्वामी को तो पहले देख लेने दो !' श्री ने झिड़का।

'अच्छा ! अच्छा !' सुधीर हँसता हुआ अमिताभ की ओर चला आया।

थोड़ी देर में अमिताभ भी जान गया कि यह खुशी क्यों कर मनाई जा रही है, कि राकेश का सम्बन्ध जो हरदोई के निवासी के मार्फत चल रहा था, पक्का हो गया है, कि यह पत्र उन्हीं हरदोई-निवासी के यहाँ से आया है, कि यह चित्र उसी लड़की का है, जिससे राकेश का सम्बन्ध पक्का निश्चित हो गया है और यह भी कि अगले सप्ताह राकेश और राकेश के अपनों को लड़की वालों ने दस्तूर के लिये निमंत्रित किया है !

थोड़ी देर में श्री पुनः खुशी मनाती वहाँ आ पहुँची।

सुधीर ने कहा—'श्री तुम तो इस प्रकार खुश हो रही हो जैसे तुम्हारा अपना ही सम्बन्ध हो गया हो !'

'जाइये।' श्री के कपोल एक बारगी रक्तिम हो उठे !

सुधीर ने मुस्कारते हुए चुटकी ली—"श्री, तुम्हारी होने वाली भाभी ज़रूर एक आँख की दिखाई देती है !'

'आप ही होंगे वैसे !' श्री ने मुँह फुलाते हुए जवाब दिया—'तभी सबको एक ही आँख से देखते हैं—'

'तो फिर इतनी खुशी किस बात की ? लड़की में ज़रूर कोई न कोई ऐसी बात होनी चाहिये, जो सामान्यत: और लड़कियों में नहीं होती !'

चित्र देखेंगे तो देखते रह जाएँगी !' श्री ने सगर्व कहा—'मुँह ऐसा है कि चाँद भी लजा उठे। आँखें ऐसी हैं······'

'कि हम ही लजा उठे—' सुधीर ने बात काटते हुए एक कहकहा लगाया ! 'जाइये। आपसे तो बात करना ही गुनाह है।' यह कह, श्री वहाँ से भाग छूटी। संध्या होते-होते तो पता नहीं कहाँ से और किस

प्रकार श्री वह चित्र अपने भैया के कमरे से चुरा कर ले ही तो आई और उसे सुधीर व अमिताभ के सम्मुख रखती हुई बोली—'अब देखिये, हमारी भाभी को।'

अमिताभ जैसे ही चित्र पर झुका, उस पर मानो गाज गिरी हो, जैसे किसी ने उसकी पसलियों में कोहनी मार दी हो। उसके नेत्रों के सम्मुख अँधेरा फैल गया। उसे लगा जैसे वह पूर्णतया अंधा हो गया है। उसके नेत्र पाषाण-से उस चित्र पर टँके रह गये और एक अकुलाया हुआ दीर्घ निःश्वास उसके होठों की राह बरबस कराहता हुआ-सा बाहर फूट पड़ा—'नीरजा।'

सुधीर के मुख पर पल भर को उस सौन्दर्य को देख, एक आलोक-सा फैल गया किन्तु दूसरे ही क्षण जब उसकी दृष्टि अमिताभ पर पड़ी तो जैसे उसके सामने से कोई पर्दा-सा उठ गया।

'कहिये, है ना चाँद से होड़ करने वाली भाभी?' श्री पूछ रही थी!

'हाँ' ठीक वैसी ही—' सुधीर ने अटपटे भाव से जवाब दिया!

'हूँ। बहुत चिढ़ा रहे थे! अब क्या ज़बान तालू से चिपक गई?' श्री ने व्यंग कसा।

'राकेश को मेरी हार्दिक बधाई पहुँचा दीजिये—' अपने स्वर को किसी प्रकार संयत रखते हुये अमिताभ ने कहा।

सुधीर अमिताभ के एक-एक शब्द में बजती हुई टीस से मन-ही-मन छटपटा उठा। बोला नहीं कुछ! श्री वहाँ से जा चुकी थी।

कुछ देर सुधीर नीरव ही बना रहा फिर अमिताभ के कन्धे पर स्नेह का हाथ रखते हुए धीरे से बोला—'यह वही लड़की है ना?'

'हाँ!'

'वही-डाकिया?'

'हाँ ! हाँ !' अमिताभ ने चीखते हुए कहा ।

'............'

कुछ देर बाद जैसे स्थिति को समझने की चेष्टा करते हुये सुधीर बोला—'पर यह लड़की तो तुम्हारे से..... '

'सुधीर !'

'मैं यह सम्बन्ध नहीं होने दूँगा अमिताभ !'

'सुधीर !' अमिताभ जैसे फिर से कराह उठा, बोला—'इस सम्बन्ध को कोई नहीं रोक सकेगा । यह सब ठीक हो रहा है ।' इसके होने में ही किसी की भलाई है—बल्कि सबकी भलाई है !'

'सम्बन्ध टूट भी तो सकता है !' भावावेश में सुधीर बोला ।

'हाँ, टूट तो सकता है किन्तु क्या उसमें पहले का सा सौन्दर्य लाया जा सकता है ? संसार में बड़ी-बड़ी मूल्यवान् चीज़ें टूट जाया करती हैं किन्तु दोस्त, क्या उनमें जोड़-जाड़ कर पुराना सौन्दर्य भरा जा सकता है ?'

'पागल है तू !' सुधीर ने झल्लाते हुए कहा ।

एक बुझी हुई मुस्कान अमिताभ के होठों पर उभर आई—'हूँ । तभी तो होश में बात कर रहा हूँ; कदाचित् तुझसे भी ज़्यादा होश में !'

'पर क्या तुम यह नहीं मानते अमिताभ कि यह सब कुछ नहीं है—केवल दो आत्माओं का हनन है और खास तौर पर नीरजा की विवशता का व्यंग, उपहास है, उसकी लज्जा और संयम पर एक अति-तीव्र आघात ?'

'मानता हूँ !' हाँफते हुए अमिताभ ने कहा ।

'और क्या तुम यह बात भी स्वीकार नहीं करते कि एक राकेश के सुख के लिये दो हृदयों पर ऐसा कुठाराघात हो, जिसे मैं यों आसानी से चुपचाप बैठा देखा करूँ ?'

उत्तर के स्थान पर अमिताभ प्रश्न बन बैठा—'किन्तु सुधीर, तुम यह क्यों नहीं समझ पा रहे कि यह जो कुछ हो रहा है, उसी में नीरजा का कल्याण निहित है ?' यह कह, अमिताभ पल भर रुका और फिर बहुत ही कातर, बहुत ही विवश से स्वर में बोला—'यह समाज, समाज की यह सारी व्यवस्था ही ऐसी है दोस्त, जिसे मैं अथवा तुम दोनों मिलकर भी पलटने का हौसला तो क्या, आज से पूर्व कभी कल्पना भी नहीं की होगी। समाज की इस संकीर्णता को, समाज के इस बुनियादी रोग को, उसकी सड़ान, उसकी गिलाजत को काट फेंकने के लिये और उसे एक नया रूप, एक नई श्री प्रदान करने के लिये, एक ऐसे नश्तर की आवश्यकता है जो जिन्दगियों की आहुति देने पर ही प्राप्त हो सकता है।......और वह एक यज्ञ है, एक ठोस रचनात्मक कदम।'

सुधीर जैसे अपने ही से लड़ता रहा।

कुछ देर साँस ले चुकने के उपरान्त अमिताभ खोखली हँसी में बोला—'नीरजा को मेरे सान्निध्य में किसी प्रकार तुम्हारे ला पटकने अथवा उसका विवाह मेरे साथ करा देने में ही तो समाज की यह सारी गिलाजतें, उसके गले-सड़े अवयव दूर नहीं हो जाते ! कितने ही इन्सान और बच रह जावेंगे जिन्हें नित्य प्रति ऐसा ही शिकार होना पड़ता है—उसके बारे में भी क्या तुमने कभी पल भर को विचार किया है ?'

सुधीर अब भी मौन बैठा, अपने से लड़ता रहा। जब नहीं रहा गया तो बौखला उठा—'मेरी समझ में तुम्हारी यह दार्शनिकता बिल्कुल समझ में नहीं आ रही अमिताभ। मैं अभी जाकर रेणु भाभी, श्री व राकेश को सब किस्सा सुनाये देता हूँ। यह सम्बन्ध.........'

'सुधीर—' अमिताभ की आत्मा विह्वल हो उठी। हाथ से सुधीर को बरजते हुए वह बोला—'ऐसा कभी मत करना दोस्त। तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध। यदि इस पर भी तुमने ऐसा किया तो मेरे साथ

जीवन में सबसे बड़ा अन्याय करोगे । मेरी आत्मा सदा संतप्त रहेगी ।' यह कह, अभिताभ ने अपना मुँह हाथों में ढाँप लिया ।

सुधीर पल भर आवाक्, विस्मित, अमिताभ को देखता रहा, फिर अपनी सजल आँखों को छिपाने के हेतु ही उसने अपना मुँह अमिताभ के कन्धे पर टेक दिया !…………

१२

दूसरे दिन अमिताभ नैनीताल से चल दिया ।

रेणु भाभी, सुधीर, श्री और राकेश ने कुछ दिन और ठहरने का काफी अनुरोध किया किन्तु वह नहीं माना । रेणु भाभी ने कहा भी कि बस, एक सप्ताह की ही तो बात है, सब साथ ही चलेंगे किन्तु उसने कह दिया कि उसे अभी अपने पिता व दीदी से मिलने जाना है। चलते समय श्री ने उसे कुछ ऐसी दृष्टि से देखा मानो अमिताभ के जाने पर उसे दुःख हो रहा हो । प्रत्यक्ष में वह बोली भी—'आपसे मिलने का सौभाग्य शीघ्र मिले, यही हार्दिक कामना बनी रहेगी ।'

बात सुनकर अमिताभ हँस भर दिया ।

श्री बोली—'आगरा आऊँगी तो बिना आपसे मिले कभी नहीं लौटूँगी—'

सुधीर उसे स्टेशन तक पहुँचाने आया । रास्ते में अधिकतर वह दोनों मौन ही रहे मानो कोई जटिल गुत्थी सुलझाने में संलग्न हों !

गाड़ी चलने से पूर्व सुधीर ने लड़खड़ाते से स्वर में पूछा—'अब कहाँ जाओगे अमिताभ ?'

आँसुओं को रोकने की चेष्टा करते हुए अमिताभ ने कहा—'देखो ·········भाग्य कहाँ ले जाता है ! हम केवल कठपुतली ही तो हैं सुधीर—नियति का तमाशा भर !'

सुधीर पल भर मौन रहा, फिर अमिताभ को अनिमेष देखते हुए बोला— 'ऐसा-वैसा कुछ भी तो नहीं करोगे ना ?'

'कैसा ?' अमिताभ खोखली हँसी हँस पड़ा। फिर विगलित कण्ठ-स्वर में सुधीर को सस्नेह थपथपाते हुए कहा—'क्या तुम भी मुझसे वैसी आशा करते हो सुधीर ?'

सुधीर का हृदय उमड़ रहा था। भावातिरेक में शब्द नहीं निकले उसने नकारात्मक ढंग में सिर हिला दिया !

'मैं अगले सप्ताह आगरा पहुँच जाऊँगा !'

'ठीक !' अमिताभ बोला।

'तब तक तुम आगरा पहुँच जाओगे ना !'

'देखो !' अनिश्चित से स्वर में अमिताभ ने कहा।

इतने में गाड़ी ने सीटी दी और कुछ देर बाद दोनों दोस्त एक दूसरे से ओझल हो गये।········ फिर वही क्रम। नई-नई जगह, नये-नये स्टेशन। वही दिन और रात। ठहरना और चलना। बस, चलते रहना। वैसे पीड़ा का क्षण तो एक ही बहुत होता है। अमिताभ को तो दिन और रात ही जैसे पीड़ामय हो गये थे ! उसे ऐसा अनुभव होता था मानो उसने समाज और व्यक्ति के बीच की शृंखला की उस कड़ी को तोड़ दिया है, जो उन दोनों को एक कर देती है। तभी तो वह भटक रहा था। तभी तो वह नैनीताल में जितने दिन भी रहा, एक विचित्र प्राणी की तरह रहा। क्या उसका आचरण, जो वहाँ श्री और रेणु भाभी के प्रति रहा, उपेक्षापूर्ण नहीं था ? जिन्होंने

उस पर अपना समस्त स्नेह उँडेला, उनसे ही उसने कितनी उपेक्षा की, दुराव किया, अपने को गोपनीय और अत्यधिक गम्भीर बनाये रखा। यदि इतने दिनों में जो पिता के यहाँ रहने पर उसका जी भर चुका था और वह वहाँ से भटके हुए प्राणी की तरह भाग छूटा—यह सब क्या था ? क्या था यह सब ? नदी के दो कगारों के समान उसने सदा अपने को दूसरों से पृथक् ही तो पाया था, जो अपने अन्तर में फूलते और मिटते रहते हैं ! ······

दिन और सप्ताह ।······

एक दिन उसने देखा कि काल-रथ के पहिये ने उसे अपने बीच तो नहीं पटका, हाँ, उसके ही शहर में ला पटका है। वह विस्मय से भर उठा। वह स्वयं की विवशता पर रो भी न सका।

जिस मकान में नीरजा रहती थी, उसकी दीवारों पर रंगो-रोगन चढ़ रहा था। बाहर शामियाने तने थे। बत्तियों का तेज़, चमकदार प्रकाश था। शहनाइयों और नगाड़ों के स्वर से आस-पास का वातावरण कम्पित हो रहा था। लोगों का भीड़-भड़क्का और खुशी की चहल-पहल थी। दिल बैठा-सा जाता था अमिताभ का !

मोहन उसे देखते ही फूला नहीं समाया ! उसका जैसे स्वर्ग हँस उठा। किन्तु अमिताभ का स्वर्ग ? बहुत ही अवरुद्ध कण्ठ से पूछा उसने—'मोहन, यह सब क्या ?'

मोहन की खुशी एक बारगी विलीन हो गई और आँखों में आँसू झिलमिला उठे—'यह·········यह, यह बीबीजी की शादी है, छोटे बाबू ! कुछ ही दिनों पूर्व यहाँ लड़के वाले आये थे ! शादी की तिथि भी पास ही निकाल गये हैं।'

'ओ—' अमिताभ को मानो किसी ने बहुत ऊँचाई से धक्का दे दिया हो !

दूसरे दिन सब की निगाह से बचकर वह वहाँ से भाग जाना चाहता था—ठीक उसी तरह जिस तरह सब की निगाह से बचकर उसने यहाँ कल रात प्रवेश किया था किन्तु उसके निकलते-निकलते द्वार में, ठीक उसके सम्मुख आकर कोई अड़ गया। वह एक हल्की चीख के साथ एक हाथ पीछे हट गया।

उसने देखा, हल्दी मले हुए एक नारी खड़ी थी, जिसके शरीर से सुहाग की स्वाँसें फूट रही थीं। सूजी-सूजी आँखें—जिनके ऊपर, भँवों से थोड़ा हटकर, अवसाद ने अपनी सीमा-रेखा डाल दी थी। आँखें स्थिर थीं, मौन थीं। आँखों में जो गहराइयाँ थीं—उनमें मोती-से कुछ चमक रहे थे और········और वह नारी और कोई नहीं, नीरजा ही थी ! बस नीरजा ही थी !

अमिताभ कुछ कहे, उससे पूर्व ही उसने कहा—'अब तक कहाँ रहे अमिताभ ?'

उत्तर के स्थान पर रुलाई फूट पड़ने को हुई अतः अमिताभ मौन ही रहा !

नीरजा जैसे उसके मौन के साथ रहकर अपने आँसुओं को धकेलने की चेष्टा कर रही थी। कुछ देर बाद कहने लगी—'एक बात बताओगे अमिताभ ?'

'क्या ?' अमिताभ का स्वर रो पड़ा !

'बस, एक बात पूछूँगी। जीवन में मेरा यह अन्तिम प्रश्न होगा अमिताभ। मुझे आशा है·········' उसने अपनी आँखों को साड़ी के छोर से पौंछते हुए कहा—'मुझे आशा है अमिताभ, मेरे इस प्रश्न का उत्तर········तुम सही-सही दोगे !'

'तुम्हारा प्रश्न क्या है नीरजा ?' अमिताभ ने होठ को दाँतों तले ज़ोर से भींचते हुए कहा।

'तुम्हारी इस तब्दीली का कारण क्या है अमिताभ ?' प्रश्न समाप्त होते-होते नीरजा के कपोलों पर दो अश्रुधारायें वेगपूर्वक बह पड़ीं।

'तब्दीली ?' अमिताभ का स्वर लड़खड़ाया—'डूबती हुई परछाईं में एक दिन······· सहसा तब्दीली आ गई थी नीरजा···········उसी तब्दीली को·········मिटाने के प्रयास में·········मेरे जीवन में भी यह तब्दीली आ गई है—' इतना कह, अमिताभ ने अपना मुँह हाथों से ढाँप लिया और·········।

'अब जा रहे हो अमिताभ ?' कुछ देर बाद नीरजा का स्वर पुनः भर्रा उठा !

'हाँ—'

'कहाँ जाओगे ?'

'............'

'कहाँ जाओगे अमिताभ ?' नीरजा फूट-फूट कर रोने लगी !

कुछ देर अमिताभ चकराया-सा खड़ा रहा, फिर भर्राये कण्ठ से बोला—

'महान् बनने·········तुम्हीं ने तो एक दिन कहा था न नीरजा कि मुझे महान् बनना है। तपस्या, कला, सत्य का अनुसन्धान ! महानता के प्रति यह लोभ······· एक दिन तुम्हीं ने तो मुझे दिया था नीरजा····। फिर अब ?' नीरजा के मुख पर एक विचित्र-सा आलोक जगमगा उठा ! मानो उसका समस्त स्वर्ग आज हँस उठा हो और दूसरे ही क्षण उसका चेहरा आँसुओं से ढँक गया।

कुछ देर अमिताभ कमरे में पागलों की भाँति खड़ा रहा और फिर पागलों की भाँति ही भागता हुआ नीरजा की दृष्टि से ओझल हो गया। शहनाइयों के स्वरों से दूर, सुहाग की सुआसों से दूर। बहुत दूर !

दिन और सप्ताह।·········

एक दिन वह पुनः अपने कमरे में आकर टिका तो मोहन से मालूम हुआ कि नीरजा की माँ यहाँ से हमेशा के लिये कहीं चली गई हैं। मालूम हुआ कि हरदोई में उनके कोई रिश्तेदार रहते हैं, उनके ही पास शायद चली गई हैं। इसके दूसरे ही दिन सुधीर से पता चला कि उसका चित्र 'डूबती हुई परछाईं' प्रदर्शनी में प्रथम आया है। प्रथम ...। वह खिलखिला कर हँस पड़ा। यह हँसी स्वाभाविक न थी।

और दिन–दिन गुजरते चले गये। इन्हीं गुज़रते हुए दिनों में, एक दिन उसे सुधीर से ज्ञात हुआ कि विवाह के पाँच माह पश्चात् ही हृदय-गति रुक जाने के कारण नीरजा चल बसी।

एक विचित्र से अवसाद से घिरा और जड़ता से भरा वह निर्विवाक सुधीर का मुँह देखता रह गया। वह रो भी न सका, चीख़ भी न सका। अपनी ही विवशता में जकड़ा वह बुरी तरह छटपटा कर रह गया। जीवन की एक बड़ी-सी खाई ने जैसे उसकी समस्त धाराओं को पाट दिया था। वह जैसे कटा-सा, विलग-सा संसार के बीच बैठा रह गया था। केवल वह रह गया था–वह—आधारविहीन और निराव-लम्ब। मधुविहीन मधुचक्र से कलेजे में अपार वेदना की भन्नाहट भरे, घुटी विहीन।

दुःख की यातना में छटपटाते हुये वह अस्फुट-से स्वर में फुस फुसाया–'मैं एक ऐसा लुढ़कता हुआ पत्थर हूँ, सुधीर जो अपनी गूँज गहरी और वीरान घाटियों में छोड़ जाता है; मैं एक ऐसा टूटा हुआ तारा हूँ जो पथ-भ्रष्ट-सा एक आग की लकीर खींचता हुआ शून्य में विलीन हो जाता है; मैं एक ऐसा अभागा फूल हूँ जिसे समाज की निर्दयता ने अपने हमजोली से जुदा कर दिया है; मैं एक ऐसा स्वप्न हूँ जो रात के दूसरे प्रहर में आता है और अपनी धूमिल याद छोड़ जाता है.........मैं क्या हूँ आखिर ? कुछ भी तो नहीं—सच सुधीर, मैं कुछ भी तो नहीं हूँ—।'

'तुम सब कुछ हो मेरे दोस्त—तुम्हारी कला, तुम्हारी साधना, तुम्हारी तपस्या को अभी तुमसे बहुत आशायें हैं— !' सुधीर की आँख से एक आँसू टपक कर उसके गाल पर बह चला।

एक विचित्र विस्मय से चौंककर अमिताभ ने सुधीर की ओर देखा 'कितने ही बन्द तूफ़ान उसके होठों पर आकर ठिठक गये और फिर एक चीत्कार में परिवर्तित होकर फट पड़े—

'तुम भी नीरजा की बोली में बोलने लगे सुधीर ?' यह कह, वह यों हँसा जैसे यह हँसना रोने का ही कोई दूसरा रूप हो।

'ऐसी बात नहीं मेरे दोस्त—ऐसी बात नहीं।' यह कह, सुधीर बच्चों की तरह अमिताभ से लिपट कर सुबकने लगा।

और यहीं कहानी का प्राण खो गया।

•